दाँवपेंच

[तथा अन्य हास्य-रहस्य-कहानियां और रूपक]

ललितकुमार सिंह 'नटवर'

प्राप्तिस्थान

बम्बई बुक डिपो

१४२।१ हरिसन रोड,

कलकत्ता ७

प्रकाशक

कल्याणदास एण्ड ब्रादर्स

बड़े महाराज का मंदिर,

बनारस १

द्वितीय संस्करण

रथयात्रा २०११

मूल्य दो रुपया

मुद्रक

मुन्नीलाल

कल्याण प्रेस, बनारस

दूसरे संस्करण के विषय में

प्रसन्नता की बात है कि प्रथम संस्करण ६ मास में ही प्रायः समाप्त हो गया। न कहीं विज्ञापन किया गया और न पत्र-पत्रिकाओं में आलोचनार्थ पुस्तक ही भेजी गई। प्रकाशन भी कुछ साधारण-सा ही था। तो भी पाठकों ने पसन्द किया। बिहार-सरकार ने प्राइज़-लाइब्रेरी के लिये स्वीकृति दे दी। नवीन संस्करण की माँग आने लगी। किन्तु खेद है कि इसमें एक साल की देरी हो गई। कारण, हमारी कई पुस्तकें जो भिन्न-भिन्न प्रेसों में दी हुई थीं, उनके प्रकाशित होने में अनावश्यक विलम्ब हो गया। इसके लिये अपने उन कृपालु एजेन्टों और पुस्तकालयों से क्षमा-प्रार्थी हैं, जिनकी माँग हम शीघ्र पूरी न कर सके।

—प्रकाशक

विषय-सूची

कहानी

दाँव-पेंच

बंगला के सुप्रसिद्ध कथाकार तथा सिने-निर्देशक श्री प्रेमेन्द्र मित्र द्वारा लिखित और निर्देशित एम० पी० प्रोडक्शन के 'पथ बेंधे दिलो' बंगला फिल्म का हिन्दी रूपान्तर इन पंक्तियों के लेखक ने किया था, और ज़ालिम दीवान की भूमिका भी निभाई थी। हिरोईन थी काननदेवी और बंगाल के अद्वितीय अभिनेता श्री छवि विश्वास हीरो थे। उसी चित्र की कहानी है। भाषा और कथारूप इस लेखक के अपने हैं।

देशी रजवाड़ों में पहले जो दांव-पेंच चलते थे, ऐसी ही एक रहस्य-रोमांच-लीला का दिलचस्प बखान है।

१

रायगढ़ का कुमार दीपनारायण सिंह मस्त और सैलानी स्वभाव का है। सुन्दर, सुसंस्कृत, पढ़ा-लिखा सहृदय। हाल ही में विलायत से लौटा है। क़र्ज़ ले-लेकर राजसी—ठाठ निभाते रहना, इस राज्य की परम्परा रही है। कुमार दीप की भी यही दशा है। इधर-उधर सैर-सपाटे करना, मौज उड़ाना और रंगीन बोतलों में ग़म को डुबकियाँ खिलाते रहना—उसका ख़ास काम है।

एक दिन—काशी की अहिल्याबाई घाट पर। सबेरे शहनाई की मीठी तान अलसाई हवा को गुदगुदा रही थी। ऊपरी सीढ़ी पर बैठा हुआ एक विरागी, गीत में अपनी वेदनाओं की कुलफत भरकर वायुमंडल में और भी मस्ती उड़ेल रहा था। अचानक घुमक्कड़ दीपनारायण हैण्ड-कैमरे का निशाना साधे आ निकला। उसकी इच्छा विरागी की फोटो लेने की हुई। कैमरे की चुरा लेनेवाली आँख पर आँखें गड़ाकर और माल हड़प जाने का खटका अट से दबाकर, कुमारने ज्योंही कैमरा सँभाला कि सामने देखकर उसकी सिट्टी-पिट्टी गुम। एक देव-कन्या सरीखी-रंगीली-सुन्दरी, राजसी चितवन तरेरे, कैमरे की सीध में खड़ी है।

'बड़े शरीफ़ हैं आप ?'

'जी, माफ़ कीजियेगा, मेरी इच्छा…।'

'गंगास्नान करनेवाली बहू-बेटियों की फोटो लेने की…।'

'जी नहीं नहीं, मैं तो इन गायक साधुजी का चित्र उतार रहा था कि अकस्मात् आप बीचमें आ गईं। आँखें कैमरे पर लगी रहने के कारण मैंने आपको देखा ही नहीं।'

'परन्तु मैंने तो आप के इस शरीफ़-लबादे के अन्दर की असलियत ताड़ ली ?'

लेकिन लाख सफ़ाई देने पर भी जब दूसरी ओर से तनिक भी विश्वास न किया गया तो क़ीमती कैमरेको गंगाजी में फेंक कर, शान से सुन्दरी को 'नमस्ते' कहता हुआ अभिमान के साथ वीप चलता बना। किन्तु किसे मालूम था कि इस अनजानी मुलाक़ात में विधाता कौनसा खेल रच रहा है।

२

युवती मीनाघाट रियासत की राजकुमारी चन्द्रावती है। हाल ही में बालिग़ होकर पिता की गद्दी पर बैठी है। राज-काज दीवान सूर्यशंकर सिंह सँभालते आ रहे हैं। स्वर्गीय महाराजाके समय उनकी चलती चलती न थी, किन्तु आजकल क्या कहना है! रौबदाब सातवें आसमान पर चढ़ा हुआ है। प्रजा का नाकों दम है। अधिकांश प्रजा जंगली है—कट्टर और परिश्रमी। उसे पीस डालने में दीवानजी ने कुछ भी उठा नहीं रखा है।

इन दिनों उन पर एक और चिन्ता सवार है। राज्यकी बाग-डोर सुरक्षित रखने के लिये, राजकुमारी का ब्याह किसी ऐसे के साथ रचाना चाहते हैं जो कठपुतली की तरह इशारों पर नाचता

रहे। परन्तु हो वह भी राज्य-मर्यादा के अनुकूल, कुलीन और शिक्षित। अन्त मे बहुत दौड़-धूप और छानबीन के बाद ऐसे एक 'हर तरह योग्य' वर का पता चला। वह और कोई नहीं, वही रायगढ़ का राजकुमार दीपनारायण है। दीवानजी को पता भी नहीं था कि राजकुमारीसे दीपकी कभी भेंट हो चुकी है। वे एक दिन एक पंडितजी—घटक के साथ 'मीनाघाट पैलेस' से कार द्वारा 'रायगढ़-निवास' पहुँचे। कुशलक्षेम के बाद भूमिका शुरू हुई। फिर तो जो बातों का सिलसिला चला, उसे ठेठ बोली में 'मोल-तोल' या 'ठंठेरे ठंठेरे बदलौवल' ही कहा जा सकता है। क्योंकि दीवानजी यदि घुटे हुए घाघ थे, तो कुमार भी कम छंटा हुआ न था। अन्त में सब कुछ समझकर और, कुछ और सोचकर कुमार बोला—

'बस-बस दीवानजी, अब और कहने की जरूरत नहीं। मीना-घाटकी राजकुमारी के वर के नाम पर, आपके हाथों अपने आपको बेंच देनेको तैयार हूँ। परन्तु······।'

दीवानजी कूटनीति की मुस्कान के साथ, एक खासी रकम का चेक काटकर—बढ़ाते हुए—बोले—

'अब परन्तु-परन्तु छोड़िए। और यह स्मरण रखने के लिये इसे स्वीकार कीजिये कि अगले बुधवार के ४ बजे सन्ध्या-समय आपको 'मीनाघाट पैलेस' आना है।'

३

मगर उस दिन, दीवानजी के खिलाफ शतरंज पर दुतर्फी चाल चली गई। मीनाघाट-पैलेस में भी, और रायगढ़-निवास में भी। 'कन्या-देखाव' की शुभ घड़ी के कुछ पहले ही राजकुमारी ने एक अत्यन्त आवश्यक राज-काजके बहाने दीवानजी को मीनाघाट भेज दिया, और अपनी चचेरी बहन लीलाको राजकुमारी की वेश-भूषामें सुसज्जित कर दिया। उधर, दीप ने भी अपने बदले, दिली दोस्त विजयकुमार को राजकुमार दीप बनाकर वहाँ भेज दिया।

बड़े आदर और ठाठ-बाट से स्वागत किया गया। 'कुमार साहब' खास महल में ठहराये गये। सखियों के द्वारा 'राजकुमारी' से परिचय कराया गया। फिर तो, दोनों ने दोनों को सकुचाई आँखों से देखा और ललचाई आकांक्षाओं से गुपचुप परखा। किन्तु उनकी अन्तर-आशंकाओं का क्या कहना! मन-ही-मन भगवान से मना रहे थे, किसी प्रकार भाँडा न फूटे और शीघ्र-से-शीघ्र छुटकारा मिले। इतने ही में आगबबूला बने, लपकते हुए दीवानजी आ धमके। लीला को काटो तो लहू नहीं। विजय-कुमार की बोलती बन्द! कर्मचारियों और सखियों पर शनि-कोप का आतंक। और इस प्रकार 'कन्या-देखाव' की निराली रसम-अदाई।

कुछ अनुमान और कुछ खोज से दीवानजी को बहुत कुछ

मालूम हो गया। वहाँ कुछ न बोले। ……पता लगाकर उस होटल के कमरे में मौत की तरह टपक पड़े, जहाँ कुमार दीप रस-रस की गंगा में शराब के गोते खिला रहा था। इच्छा तो हुई, उसी हालत में उसे कच्चा ही चबा जायँ, किन्तु मौका-महल देख कर क्रोध पीते हुए बोले—

'क्या समझकर आपने चाल चलने का साहस किया ?'

दीप—'पहले तो आपकी ही तरफ से हुई दीवानजी !'

दीवान—(क्रोध-विस्फोट रोक कर) 'मगर, आप मात हो गये !'

दीप—(हँसकर) 'आपकी बराबरी भला कौन कर सकता है ?'

दीवान—'मैंने नहीं, राजकुमारी ने आपको छका दिया।'

दीप—'किस प्रकार ?'

दीवान—'हुँह, चले थे मीनाघाट-राजनीति से टक्कर लेने। नकली राजकुमार से नकली राजकुमारी की भेंट करा दी गई।'

दीप—(आश्चर्य से) 'अच्छा।'

दीवान—'जी !'

दीप के मन में राजकुमारी की इस चातुरी पर एक विचित्र कौतूहल हुआ। कम-से-कम एक बार देखने की प्रबल उत्कंठा उत्पन्न हुई। प्रगट में बोला—

'अच्छा दीवानजी, बीती बिसारिए। भूल तो आखिर हो ही गई मुझसे। अब कहिए क्या आज्ञा है ?'

दीवान-- ([illegible]) 'मेरी आज्ञा क्या ? मैं तो आपकी --राजगढ़ [illegible] प्रतिष्ठा । राजवंश के उत्तराधिकारी की, भलाई के विचार से ही यह सुन्दर सम्बन्ध जुटा देना चाहता था, क्योंकि [illegible] राजवंश ही...।'

दीप-- ([illegible])'तो मैं आपके आज्ञानुसार प्रस्तुत हूँ । बोलिए क्या करना होगा ?'

दीवान--'राजकुमारी को लेकर आज हम राजधानी जा रहे हैं । ठीक आठवें दिन--सबेरे की गाड़ी से आप वहाँ आइए । क्या कहते हैं ?'

दीप--'जी, मैं अवश्य पहुँचूँगा ।'

दीवान--'आपके स्वागत के लिये राज्य के कर्मचारी स्टेशन पर मौजूद रहेंगे । किन्तु स्मरण रहे, फिर किसी प्रकार की गड़बड़ी कीजियेगा तो...।'

दीप--'नहीं जी, अब ऐसी भूल न होगी; विश्वास कीजिये ।'

४

विचित्र संयोग !--ट्रेन के जिस सेकेण्ड-क्लास कम्पार्टमेण्ट में दीप सवार हुआ, एक पढ़े-लिखे अजीब उजबक से भेंट हो गई । महाशयजी बर्थ पर होल्डौल बिछा कर, सिरहाना इंजन की ओर करना चाहिये या उलटी तरफ़--यह निश्चय न कर पा रहे थे । इस विचित्र मनोवैज्ञानिक उलझन के तमाशेसे तंग आकर दीप ने जब अनिमंत्रित सुझाव पेश कर दिया कि 'जनाब, आगे-पीछे का

विचार छोड़कर बीचमें रख दीजिये' तो हजरत बहुत झुँझलाये। फिर दोनों में मुसाफिरी-सुलभ-सौहार्द हो गया। दीप को बताया उन्होंने 'रियासती वकीलके उम्मीदवार चुने जाकर मीनाघाटी जा रहे हैं। इधर शिवपुर-मिडिल इङ्गलिश स्कूल की हेडमास्टरी की मंजूरी भी आ गई है। अभी तक फैसला नहीं कर पाये हैं कि कहाँ जायँ।'

दीप ने कहा—'वाह साहब, आप तो बड़े भाग्यवान हैं। दो-दो जगहों से बुलाहट, तिस पर इज्जत की नौकरियाँ। और एक हम हैं बदनसीब, कहीं कोई नहीं पूछता।' महाशयजी तकदीर की खूबी पर मन-ही-मन इतराये तो, मगर निर्णय न कर पाये कि कौन नौकरी स्वीकार करें। आखिर पूछा—

'क्यों साहब, रियासती कामों में तो भारी झंझट-झमेले लगे रहते हैं, और धौंस भी सहना पड़ती है ?'

दीप—(गम्भीरता से) 'इसमें क्या संदेह है महाशय ! राज-काजी लोगों की जान सदा उलझन और खतरे में रहती है।'

कुछ सोचकर फिर बजाजक महाशय ने पूछा—

'मीनाघाटी स्टेशन के पहले जो जंक्शन पड़ता है, उसके द्वारा कलकत्ते लौटने की गाड़ी तुरंत ही मिल जायेगी न ?'

दीप—'वहाँ उतरते ही पता चल सकता है।'

फिर दोनोंको नींद आ गई।

सबेरे मीनाघाट स्टेशन पर जब कुमारकी आँखें खुलीं तो

देखना मानने का अर्थ खाली है। सोचा, रियासत की वकीली आखिर स्कूल मास्टरी से हार गई। इतने में ही रियासत के कई कर्मचारियों ने आ घेरा। पूछने पर मालूम हुआ कि उसी ट्रेन से आनेवाले कुमार दीपनारायण और वकील जगदीश लाल को लेने आए हैं। एक ने पूछा 'आप...?'

कुमार दीप—'जी..., मैं एक मामूली आदमी...।'

उस कर्मचारी ने उन्हें वकील समझ लिया — 'ओ, तो आप जगदीश बाबू हैं!' कुमार ने भी कुछ समझकर उत्तर दिया—

'जो समझ लीजिये; लेकिन हूँ बिलकुल साधारण व्यक्ति।'

कर्मचारीने हँसकर कहा—'आप वकील लोग बातें बनाना खूब जानते हैं।' फिर कुमार के न आने पर खेद प्रगट करते हुए अन्य व्यक्तियों को कहा—'वकील साहब का सामान ले चलो।' और इस प्रकार कुमार दीप को वकील जगदीश के रूप में, राज-कर्मचारियोंने राज-महल में पहुँचाया।

कर्मचारी दीप को दीवान की हजूरी में ले गये। पहचानते ही एकाएक दीवान पागल ही हो उठना चाहता था कि बड़ी चेष्टा से अपने को सँभाला, कर्मचारियों पर कुछ भी प्रगट न होने दिया। किन्तु जब सब इशारा पाकर बाहर चले गये तो जैसे बाघ शिकार पर झपटता है, उसी मुद्रा में झपट कर कुमार से बोला—"अगर जाली नाम की धोखाधड़ी के अभियोग में, तुम्हें गिरफ्तार करा दूँ, तब, ?' 'तब ? कुमार बोला 'तब मैं और

क्या करूँगा ? सिवा इसके कि तुमसे ब्याह रचाने की आड़ में राजकुमारी के साथ जालसाजी करने के प्रमाणस्वरूप मैं आपका हस्ताक्षर किया हुआ चेक पेश कर दूँ।' दीवान की इच्छा तो हुई कि अभी कुमार को कच्चा ही चबा जाए, किन्तु परिस्थितियों की मजबूरी ने लाचार कर दिया। अन्दर ही अन्दर दाँत कट-कटाकर रह गया।

५

वकील जगदीशलाल के नाम से दीप एक अच्छे क्वार्टर में आराम से रहने लगा। दीवान अवसर की ताक में घात सोचता रहा। उसने पूरी चेष्टा की कि राजकुमारी से दीप न मिलने पावे। अन्त में एक दिन सुयोग आ ही गया। दीप साइकिल पर सवार होकर घूमने निकला। सरकारी बागीचे की सँकरी सड़क पर उधर से एक सुन्दर टमटम आ रही थी। बचाने की भरपूर चेष्टा करने पर भी—साइकिल-टमटम की आखिर एक हलकी टक्कर हो ही गयी। दीप गिरते-गिरते बचा। क्रोधभरी दृष्टि जैसे ही टमटम-सवार पर गयी, मुँहसे प्रगट होनेवाला आक्रोश वहीं दब गया। उधर सलज्ज, मुसकुराहट भरे मधु मुखसे निकल पड़ा—'माफ़ कीजियेगा।' दीप ने देखा, वही काशी-घाट वाली गर्वीली युवती है। शायद उसने भी पहचान लिया। क्षण भर कोई कुछ न बोला, किन्तु चारों आँखें न जाने चुपके-चुपके आपस में क्या कह-सुन गईं। प्रगट रूप से जान-

पहचान की नींव पड़ी। दीप ने बताया, वह नया-नया रियासत का वकील होकर आया है। युवती—राजकुमारी ने अपना वास्तविक परिचय न देकर कहा—

'मैं रानीजी की खास सहेली हूँ।' और टमटम से उतर पड़ी। दीप ने भी साइकिल को एक वृक्ष के सहारे लगा दिया। फिर दोनों पास के एक प्राचीन खँडहर में चले आए। क्षण भर कोई कुछ न बोला। दीप ने मौनता भंग की—'क्या रानी जी अपने कर्मचारियों को कभी दर्शन नहीं देतीं?'

'देती हैं' युवती ने उत्तर दिया 'किंतु यह दीवान जी की मर्जी पर है।'

दीप—'दीवान की मर्जी पर अपने कर्मचारियों को दर्शन देती हैं। तब तो अच्छा शासन चलाती हैं।'

युवती—(मुस्कुराकर) 'क्या इसमें कुछ असुविधा है?'

दीप—'सुविधा-असुविधा की बात तो मैं नहीं बता सकता। मामूली कर्मचारी हूं—तिस पर नया, क्या जानूं? हाँ, आपसे एक निवेदन है।'

युवती—'कहिये।'

दीप—'क्या आपके दर्शन कभी-कभी हो सकते हैं? इसमें तो दीवानजी की मर्जी की जरूरत नहीं है?'

युवती—'दीवानजी की मर्जी की, यहाँ हर काममें जरूरत है वकील साहब! खैर, मैं चेष्टा करूँगी।'

दीप—'तो कल इसी समय यहीं. आशा करूँ ?'

युवती—'देखिये, मैं पूरी चेष्टा करूँगी, परवश हूँ।' अच्छा, देर हो रही आज्ञा दीजिये। नमस्ते।'

दीप—'नमस्ते।'

शाम को राजकुमारी ने दीवानजी से पूछा—'अच्छा दीवान काका, यह जो स्टेट का नया वकील आया है, कभी दरबार में नहीं आया।'

दीवान—'क्या बताऊँ बिटिया, बड़ा झेंपू है। कई बार हाजिर होने को कहा- मगर कहता है-कुछ दिन और ठहरिए, जरा अपने में साहस बटोर लूँ तो रानी जी के दर्शन कर सकूँगा।'

राजकुमारी—(मुस्कराकर) 'ओ यह बात है ! अच्छा किसी दिन उसे जरूर लाइए।'

दीवान—'भला इसके बिना भी चल सकता है ? उसे दरबार में आना ही पड़ेगा।'

दूसरे दिन। ठीक उसी समय, दीप खण्डहर में जैसे ही पहुँचा, वीणा-विनिन्दित-स्वर लहरीमें किसी का स्वर्गीय संगीत सुन पड़ा। आगे बढ़कर देखा। वही कलवाली—मतलब बनारसवाली—युवती जूही के पौधे की एक फूल भरी टहनी से खेलती हुई गा रही है। मंत्रमुग्ध हो-स्तब्ध भाव से दीप खड़ा-खड़ा सुनता रहा। जैसे ही गीत खतम हुआ, उसने साइकिल को एक पेड़ के सहारे लगा दिया। एक हलकी झनझनाहट की आवाज़ हुई। युवती ने ज़रा चौंककर इधर देखा, और सलज्ज-हास्य से बोली—

"भला यह कौन सा तरीक़ा है कि कोई स्त्री अकेले में—अपना दुख भुलाने को कुछ गा रही हो तो कोई पुरुष चुपके से आकर सुने ?'

दीप पहले तो कुछ घबराया, फिर बोला—

'इसके उत्तर में सिवा क्षमा-याचना के और क्या कहा जा सकता है ?' और फिर मैं तो किसीके दर्शन पानेकी स्वीकृति प्राप्त करके ही यहाँ आया हूँ। क्या मालूम था कि जैसे इस खण्डहरकी राजलक्ष्मी इस तरह दर्शन देंगी !' राजकुमारी मन-ही-मन प्रसन्न हुई।

बोली—'पुरुपवर्ग, विशेषकर क़ानूनी लोग बड़े ही वाकूपटु होते हैं। खैर, यह तो बताइए। कल आपने राजकुमारी जी के दर्शन की कामना प्रगट की थी, फिर मुझसे मिलने की चाह एकाएक कैसे हो उठी ?'

दीप—'आपसे मिलने की सम्भावना तो नहीं थी, फिर भी एकाएक इस प्रकार मिल जाने पर......क्या बताऊँ, काशी की घटना तो जीवन भर भूलने की नहीं है। और रानी जी के दर्शन एक बार करने की इच्छा से ही तो मैं......'

राज०—'उन्हें तो आपने कभी देखा भी नहीं, फिर दर्शन की उत्सुकता का कारण ?'

दीप—(सँभलकर) 'बात यह है कि मैंने सुन रखा था कि

रानी जी का अधिकार केवल महलों तक ही सीमित है, और प्रजा पर हुकूमत कोई और करता है। इसीलिए......'

इतने में ही एक घटना घटी। भोली प्रजा का मुखिया जंगी सरदार दीवान के विरुद्ध था। ऐसा न हो कि वह 'नए वकील' से मिलकर सारा भेद खोल दे, इसीलिए दीवान जी ने उसे पकड़ने के लिये सिपाही छोड़ रखे थे। जंगी भागता हुआ इधर ही आ निकला और इन दोनों से, पीछा करनेवालों को न बताने की प्रार्थना करता हुआ, आड़ में छिप गया। सिपाही भी दौड़े हुए आये, और इधर-उधर ढूँढ़ने लगे। जमादार की दृष्टि रानी पर पड़ी, उसने चुपके से आदमियों से कहा 'रानी जी'। और फिर राजसी सलामी देकर सब चलते बने। दीप को तो जैसे काठ मार गया। कुछ डरा। कुछ काँपा कि रानी ने तीसरी बार उसे मात दी। साथ ही मन ही मन रीझा भी। और अन्त में अभिमान भी हो आया। इतने में ही जंगी को पकड़े हुए कर्मचारी आ पहुँचे। जंगी रानी की दुहाई दे रहा था कि, उस पर कैसे-कैसे अत्याचार किये गये हैं। और अब......दीप उसकी बात काटकर रानी की ओर संकेत करते हुए बोला—

'सरकार, तुम किससे क्या कह रहे हो? भेड़िये की फरियाद बाघ से करने आये हो?' रानी इस व्यंग पर तिलमिला उठी, और कुछ क्रोध के साथ दीप की ओर देखती हुई चल पड़ी।

सिपाहियों की तरह दीप ने भी सलामी दागी। जंगी को रस्सियों से खूब जकड़कर काठ की पिंजड़ेनुमा कैदी गाड़ी में बंद कर दीप से जमादार बोला—

'हुजूर दीवान जी का हुक्म है, इसे सख्त पहरे में कैदखाना पहुँचाया जाये।' 'ठीक तो है' कहता हुआ दीप गाड़ी के पीछे बैठ गया और जमादार से बोला—'मैं खुद अपनी निगरानी में इसे कैदखाना पहुँचाता हूँ, तुम लोग मेरी साइकिल लेते आओ।' कुछ दूर आगे जाने पर दीप पिंजड़े के द्वार का खटका हटाकर कैदी से बोला—

'क्यों सरदार सो गये?' जंगी दुख की मुस्कुराहट चेहरे पर लाकर बोला—'हुँह, मेरी आँखों में और नींद? क्या कहते हो, दारोगा जी!'

'मैं दारोगा नहीं, वकील हूँ।' दीप ने कहा।

जंगी—'वकील? क्या मतलब?'

दीप—'वकील माने क़ानून जाननेवाला।'

जंगी—'हुँह, तो इस राज्य में क़ानून जाननेवाले की क्या जरूरत? यहाँ तो दीवान जी का हुक्म ही क़ानून है।'

दीप—'किस तरह?'

जंगी—'आप शायद नए-नए आए हैं। यह सब पूछिएगा तो आप पर भी आफ़त आयेगी।'

दीप को पहले ही से कुछ-कुछ दीवान जी की कार्यवाहियों का पता था। जंगी से घुमा-फिरा कर पूछने पर और भी बहुत

कुछ की जानकारी हो गई। गाड़ी ऐसे स्थान से जा रही थी, जहाँ वृक्षों की बहुतायत से दिन में ही अँधेरा-सा हो रहा था। दीप गाड़ीवान से गाड़ी रुकवाकर पेशाब करने के बहाने उतर कर एक ओर—ज़रा दूर चला गया। जंगी ने देखा कि पिंजड़े का द्वार अधखुला-सा है। पैर से हटा कर देखा, एकदम खुल गया है। बस आहिस्ते से उतर कर चुपचाप एक तरफ़ भागा। गाड़ीवान को आहट मिल गई, चिल्लाना शुरू किया—'पकड़ो-पकड़ो, कैदी भाग गया, कैदी भाग गया।'

\+ + + +

६

दूसरे दिन, पहले-पहल दरबार में दीप की पेशी हुई। रानी गंभीर भाव से सिंहासन पर विराजमान थी। दीवान ने कैफ़ियत तलब की।—'राज्य के सबसे बड़े विद्रोही जंगी सरदार को किसने चुपके से रिहा कर दिया?' दीप उबल पड़ा। रियासती अत्याचारों से परिचित हो ही चुका था। साथ ही, रानी ने भी अपना भेद छुपा कर—उसे जो ठुकरा दिया था। उससे भी वह कुढ़ा हुआ था। रानी के अनजाने या लापरवाही से, राज्यकर्मचारियों के ज़ुल्मों का पर्दाफाश बड़े ही जोशीले शब्दों में करता हुआ, इस्तीफ़ा देकर तेज़ी से चलता बना। रानी को अनुभव हुआ, जैसे वह खोई जा रही। मन का भेद छिपा कर दीवान से बोली—'काका, इस

प्रकार अभिमानपूर्वक इस्तीफ़ा देकर कोई कर्मचारी बेधड़क चला जाये, यह राज्य का अपमान है। चाहे जैसे हो, लौटा कर—उसे उसी काम पर बहाल कीजिये, और फिर उसे बेइज्ज़ती के साथ कभी निकाल बाहर किया जायेगा।'

घाघ दीवान शायद रानी के मनकी भाँप गया। इसलिये दीप के विश्रामस्थान में जाकर उसने बातों का सिलसिला कुछ इस तरह शुरू किया, जिससे दीप और भी भड़क उठा। दीवान बोला—

'राजकुमारी तो आपको जाने देना पसन्द नहीं करतीं। इसीलिये मैं आपको लौटाने आया था। पर देखता हूँ, आपका इरादा अटल है। खैर, जब आप जा ही रहे हैं, तो रास्ते में आपको कष्ट न हो, इसलिये (दो हज़ार के नोट देते हुए) यह छोटी सी रक़म मंजूर कीजिये।''

दीप क्रोध से इस्तीफ़ा देकर चला तो आया, पर रास्ते भर उसका हृदय अशान्त रहा। राजकुमारी के आन्तरिक और बाह्य आकर्षणों से वह बेतरह प्रभावित हो चुका था। साथ ही यह भी उसके ध्यान में आया कि सुशिक्षिता-सुचतुरा है तो क्या हुआ, धूर्त दीवान राज्य में गोलमाल मचा कर बेचारी को बर्बाद कर देगा। एक विचित्र बेचैनी अनुभव करने लगा। 'क्या... किसी प्रकार इस्तीफ़ा लौटाया नहीं जा सकता? इतने में ही दीवान की आकस्मिक उपस्थिति और उसकी कूटवार्ता ने फिर

माथे में खलबली मचा दी। इस्तीफ़ा वापस लौटाने की इच्छा को क्षणिक दुर्बलता समझ, वह राजधानी त्यागने को और तत्पर हो गया था, किन्तु दीवान को दो हज़ार के नोट देते देख विचारों ने पलटा खाया। तेज़ दिमाग़ तेज़ी से दौड़ने लगा। रानी का तेजस्वी पर भोला मुखड़ा, उस पर एक विषाद की छाया, राज्य की कुव्यवस्था, दीवान की चक्रचाल, दीप के मानस-पट पर विद्युत-गति से चित्रित हो उठे। क्षण भर में ही, मन-ही-मन कर्तव्य निश्चित करके बोला—

'क्या करूँ दीवानजी, रानी जी की आज्ञा; तिस पर आप इतना कष्ट उठाकर खुद अनुरोध करने आए। इस्तीफ़ा नहीं लौटाता हूँ तो डबल अपराध होगा। पर एक शर्त है। मुझ सेवक को सदा अपनी छत्रछाया में रखियेगा।'

दीवान मन में कट सो गया पर प्रगट बोला—

'आपके इस निश्चय से बड़ा संतोष हुआ।'

७

अब तो रानी और राज्य-वकील हिल-मिलकर राजकाज की समुचित देख-रेख करने लगे हैं। दीवान जी की उतनी ज़रूरत नहीं होती—इससे उनके पैरों के नीचे की धरती खिसकती-सी जान पड़ती है। तब उन्होंने एक गहरी चाल चली। राजीव-लोचन उनके दूर के रिश्ते का नाती है। बिगड़े रईस का मातृ-पितृ-हीन लड़का, तिस पर औव्वल दरजे का भोंदू और पियक्कड़।

उसकी एक मौसी है, जो उसकी भी चाची है। दोनों को दीवान जी बड़े आदर से राजमहल के अतिथि गृह में ले आते हैं। लोगों को न जाने किस तरह मालूम हो जाता है कि सम्मानीय युवक अतिथि ही राजकुमारी चन्द्रा का भावी पति है।

एक दिन रानी और वकील टेबल पर फैले एक नक्शे को देख रहे थे। अगर कोई इन दोनों के देखने की लुका-चोरी को गौर से देखता तो एक दूसरा ही नक्शा बनता हुआ नजर आता। जब राजकुमारी नक्शे पर गम्भीर होकर देखती तो वकील चुपके से उसके मुखड़े को निहार लेता, और जब वकील नक्शे पर दृष्टि जमाता तो रानी उसके चेहरे का चित्र आँखों में उतार लेती। इस अभिनव-अभिनय के अतिरिक्त दोनों के अन्तर में भी जो एक प्राकृतिक लुकाचोरी का दृश्य अंकित होता जा रहा था, उसे अन्तर्यामी के सिवा और कौन देख सकता है? हाँ, दीवानजी की आशंकित-कल्पना बेचैनियों के पंख लगाए हरदम-हर जगह चक्कर काटती रहती थी। दीप ने नक्शे पर तर्जनी घुमाते हुए कहा—

'अगर जंगल का यह हिस्सा साफ कर सड़क निकाल दी जाय तो जंगलियों का खतरा भी बहुत कुछ टले और उन्हें सुविधा भी हो।'

राजकुमारी ने मुस्कुरा कर उत्तर दिया—

'मगर दीवान काका की राय कुछ और ही है।'

इसके उत्तर में दीप कुछ कहना ही चाहता था कि आकस्मिक वज्रपात की तरह दीवान जी झट से आ धमके और बोले—'देखता हूँ, बेतरह उलझी हुई हो बिटिया !'

राजकुमारी—(सँभल कर) 'नहीं नहीं, उलझना कैसा काका ? एक नक्शे पर विचार कर रहे थे हम लोग। आप भी आ ही गये हैं, देखकर पास कर दीजिये।'

दीवान—'इस समय एक दूसरे ही आवश्यक काम से आया हूँ बेटा। बात यह है कि (लम्बी भूमिका के उपसंहार का अन्त करते हुए) स्वर्गीय महाराजाधिराज जो भार इस वृद्ध सेवकपर सौंप गये, उसमें एक तो तुमने आप ही हलका कर दिया।······ क्या नाम है ? हाँ, जगदीश बाबू ऐसे राजकाजी—सलाहकार तुम्हें प्राप्त हो गए हैं। अब एक दूसरा बोझा उतार दूँ तो निश्चिन्त होकर काशीवास करूँ। कुमार दीप तो महा गिरा हुआ साबित हुआ। बात पक्की करके भी नहीं आया। बड़ी दौड़-धूप के बाद एक सुयोग्य वर का पता लगाकर उसे उसकी संरक्षिका सहित यहीं बुला लिया है। राज्य के ज्योतिषियों और पंडितों ने जन्मपत्रियों का मिलान करके शुभलग्न का दिन भी निश्चित कर दिया है, अगले महीने की १७ तारीख। अब...'

राजकुमारी......(अप्रतिभ होकर) 'काका, अभी इसकी क्या जल्दी है ? अभी मैं ब्याह न करूँगी।'

दीवान—'नहीं बिटिया, अब यह कैसे हो सकता है ?

तैयारियाँ आरम्भ हो गई हैं—सभी जगह निमंत्रण भेजे जा रहे हैं'......दीप से नहीं रहा गया। दीवान के शब्द उसकी छाती पर हथौड़ी की चोट मार रहे थे। उठकर जाना ही चाहता था कि दीवान ने रोककर कहा—

'कहाँ चले वकील साहब ? सब कुछ तो आप ही को करना होगा। मैं बूढ़ा—कमज़ोर; किधर-किधर, क्या-क्या देखता फिरूँगा ? खूब धूमधाम से मेरी रानी बिटिया का ब्याह करा दीजिये। मेरे काशी-वासके बाद आप ही तो राज्य के दीवान होने योग्य हैं।'

चोट-पर-चोट खाकर दीप तिलमिला उठा। दोनों हाथ उठाकर प्रणाम करने की मुद्रा में झट से बाहर हो गया।

८

दीप का मन और अशान्त हो गया। जी में आया फिर इस्तीफ़ा देकर चल दूँ, और कभी न लौटूँ। किन्तु शीघ्र ही यह ख़याल बदल गया। सोचने लगा—'दीवान ने पहले मेरे ही साथ राजकुमारी के ब्याह का प्रस्ताव किया था। उस समय बात कुछ और थी। मैंने उसे देखा भी नहीं था। पर अब ? अब तो न केवल देखा ही है, बल्कि......बहुत कुछ आगे पग बढ़ा चुका हूँ। तब ? तब यहाँ से भागना कायरता है। लेकिन किसी दूसरे के साथ जो चन्द्रा के ब्याह की तैयारी हो रही है, इसका क्या होगा ? क्या किसी भाँति रोका नहीं

जा सकता ?' इसी प्रकार की अव्यवस्थित विचारधाराओं में बहुत देर तक बहता हुआ—एकाएक कुछ निश्चय करके उठा और सफ़र की आवश्यक तैयारी करके नौकर से बोला—

'मैं एक बहुत ज़रूरी काम से जंगलटोला की कचहरी जा रहा हूँ, दरबार में कह आना' और फिर साइकिल द्वारा घने जंगल की ओर चल पड़ा।

दीवान ने सुना। उसके होंठ में एक दबी-सी हिंसक मुस्कुराहट खेल गई। अपने एक खास दूत को बुलाकर—धीरे से कहा—

'जगदीश बाबू वकील जंगलटोला गये हैं। उधर अनेक बीहड़ पहाड़ियाँ, भयंकर जंगल, खोह, नदी-नाले हैं; हिंसक पशुओं का तो कहना ही व्यर्थ है।'......वकील की लाशका भी पता नहीं चल सकता, किसी पर सन्देह करना तो और भी कठिन है।......मेरा ख्याल है तुम समझ गये होगे।......इनाम की चिंता न करना।'

दूत—'जी मैं सब कुछ समझ गया।'

दीवान—'तो फौरन रवाना हो जाओ।'

दूत सर झुकाकर चलता बना। दीवान ने संतोष की साँस ली।

६

राजकुमारी चन्द्रावती जब तक राजसिंहासन पर नहीं बैठी

थी, अत्यन्त सुखकर और निर्द्वन्द्व जीवन बिता रही थी। सदा पढ़ना-लिखना, घुड़सवारी, व्यायाम, संगीत, विनोद। और अब? जैसे दूसरी दुनिया में आ गई। सारे हास-उल्लास समाप्त। रियासती झंझटों से जैसे बुढ़ापे का आक्रमण आरम्भ हो गया हो। दीवान काका तो सब कुछ देख-भाल करते ही थे—राज्य और राज्याधिकारिणी के संरक्षक की तरह। परन्तु कभी-कभी अनुभव होता, वह दीवान काका की गोद में खेलनेवाली बालिका नहीं, उनके विकट-संकेत-सूत्र की कठपुतली मात्र है। क्या करती? अप्रत्यक्ष में असहाय थी, प्रगट में परवश। बाल-विकास पूर्ण होकर निज में अपूर्णता अनुभव करने लगा था। उसे प्रथम-प्रथम काशीघाट पर किसीकी धूमिल छाया छू गई थी। जगदीश वकील के साक्षात्कार ने मिटती लकीरों में गहरा रंग भर दिया। चन्द्रा के भावी जीवन की कल्पनाएँ सहस्रों रंगीन धाराओं में लुका-छिपी की अठखेलियाँ करने लगी। जैसे उसने सच्चा सहारा पाया—पहले पहल जीवन के बाहरी ज्ञान में और अन्दर के अज्ञान में भी शायद। हाँ कभी-कभी जगदीश के कुल-वंश के बारे में वह असमंजस में पड़ जाती थी।

ज्योंही मालूम हुआ कि वकील साहब जंगलपुरी गये, वह घबरा गई। जैसे सैकड़ों बिजली के रंग-बिरंगे बल्बों के प्रकाश से झलमल रङ्गमहल में 'स्विच' फेल कर जाने से अचानक अन्धकार हो जाता है, उसी प्रकार राजकुमारी के हृदय में घोर अन्धेरा छा गया। शीघ्र ही दीवान जी को बुलाकर कहा—

'यह क्या बात है काका, वकील जगदीश एकाएक बिना सूचना दिए जङ्गल में क्यों चले गये ?'

'क्या बताऊँ बिटिया'--गले को साफ करके दीवान ने कहना शुरू किया--'अभी तक तुम्हें बताया नहीं, जगदीश छद्मनाम है। यह आदमी बड़ा ही धोखाबाज़ जालिया है। असल में यह वही विजयगढ़ का आवारा कुमार दीपनारायण......।' अचानक जैसे रङ्गमहल फिर जगमगा उठा हो, उसी प्रकार दीवान जी के उस शब्द पर चन्द्रा का मन-मन्दिर झलमला उठा। आश्चर्य, आनन्दातिरेक, और शंका से उद्विग्न हो उठी। पर, शीघ्र ही अपने को सम्भाल कर बोली—

'तब क्या करना चाहिये काका ? ऐसे व्यक्ति' –

दीवान ने कुछ और ही समझ कर, बात काट कर बोला—

'हाँ बेटा, ऐसे व्यक्ति का क्या ठिकाना-- क्या कर बैठे ? मुझे तो सन्देह हो रहा है कि कहीं वह जङ्गलियों के साथ षड्यन्त्र रचकर राज्य के विरुद्ध कोई भारी उपद्रव न खड़ा करे। क्योंकि जङ्गी सरदार से उसका मेल हो ही चुका है। मेरी राय में, उसकी गिरफ्तारी के लिये फौरन ही सैनिक भेजे जायँ।'

रानी ने उत्तर दिया—'नहीं नहीं काका, यह उचित न होगा। हमलोग चलें वहाँ शिकार खेलने। आदमियों का काफी इन्तज़ाम कर लीजिये। जैसा मौक़ा देखेंगे, उचित कार्यवाही की जायेगी।' दीवान क्षणभर सोच कर बोला—

'तो···मेहमानों को भी ले चला जाये। चन्द्रा बोली—'क्या हर्ज है।

× × × ×

मेहमान का मतलब पाठक समझ ही गये होंगे कि राजीव लोचन और उसकी मौसी से है। जब दोनों राजधानी में आए, तो राजसी ढंग से इनका स्वागत हुआ। राजमहल में राजकुमारी से परिचय कराया गया। राज्य के अतिथिगृह में बड़े आदर से ठहराये गये। दीवान जी प्रायः चेष्टा करते रहते कि राजीव राजकुमारी से हेल-मेल बढ़ाता रहे। कई बार उसे समझाया गया, पर नमक की पुतली को समुद्र की थाह लेने का साहस ही कैसे होता? उसे दरबार के नाम से ही बुखार चढ़ आता। मौसी जी बहुत कुरेदतीं, तो रो-कलप कर कुछ दूर आगे बढ़ता, फिर हिम्मत हार कर किसी शराबखाने में ढुक जाता। और खुद लौटता भी नहीं, जब चपरासी-प्यादे जाते तब 'मीनाघाटी रियासत के होनहार महाराज' को बेहोशी की हालत में उठा लाते। और जब जंगल में शिकार खेलने जाने को उसे तैयार किया गया तो उसकी आत्मा कूँच कर गई। मौसी के पैर पकड़ कर बोला—

'मौसी, मैं बाज आया रानी ब्याह करके राजा बनने से। बाप रे बाप, भालू-सिंह से भरे जंगल में शिकार खेलने जाना होगा? दुहाई है तुम्हारी 'जैसा हूँ वैसा ही रहने दो। लौट चलो कलकत्ता, नहीं तो...' मौसी ने देखा कि किनारे लगी नाव अभागा डुबाना चाहता है। आँखों में आँसू भर कर बोली—

'अच्छा, तुम जाओ कलकत्ता, मैं इधर गले में फाँसी लगा कर न मर जाऊँ तो कहना।' मौसी ही राजीव की सब कुछ थी। उसके बिना वह कहीं भी अकेले नहीं रह सकता था। रियासती-रईसी ढंग में पला, युवक होने पर भी वह बच्चे से भी गया बीता था। मौसी की आँचल तले सदैव खेलनेवाला युवक-शिशु उसकी मृत्यु की बात सुनते ही काँप उठा, और, और भी जोर से उसके पाँव पकड़ बोल उठा—

"अच्छा बाबा जो तुम कहोगी, वही होगा। कृपा कर मरने की बात मुँह से न निकालो।"

जङ्गल जाने के पहले दीप ने विजयकुमार को समीना घाटी आने के लिये जरूरी तार भेज दिया था। जब वह आया तो सब-के-सब शिकारगाह रवाना हो चुके थे। राजमहल में केवल लीला थी। मिलते ही दोनों मुस्कुरा उठे। यह अजीब-सी पहली मुलाक़ात कुछ अजीब तरह ताजा हो उठी। फिर तो दोनों घुल-मिल कर देर तक बातें करते रहे। राज्य की वर्तमान परिस्थिति, और दीवान के दाँव-पेंच पर भी सलाह-मश्विरे हुए। तय हुआ कि ऐसी नाजुक अवस्था में, हम लोगों को भी वहीं चलना चाहिये। नायब दीवान मुचकुन्द सिंह को राजधानी की देखभाल के लिये समझा बुझाकर, विजय और लीला जङ्गलपुरी चल पड़े। और इस प्रकार, नकली कुमार

दीप और नकली कुमारी चन्द्रा रास्ता चलते-चलते किसी और ही मंजिल पर आ पहुँचे !

१०

जङ्गलपुरी के सरदार जंगी को ज्यों ही पता चला कि उसका प्राणदाता 'शिकार महल' में आया हुआ है, अपने सैकड़ों साथियों सहित आ पहुँचा और भक्तिपूर्वक 'देवता बाबू' कहकर दीप का स्वागत किया। इतने दिनों पर रियासत के एक उच्च कर्मचारी को अपना रक्षक जानकर जङ्गलियों की प्रसन्नता का पारावार न रहा। पर जैसे ही मालूम हुआ कि रानी और दीवान भी लाव-लश्कर के साथ आ रहे हैं, प्रतिहिंसा की भावना से वे पागल हो उठे। सब-के-सब गाँवों में फैलकर विद्रोह की तैयारियाँ करने लगे।

दीप का मन अब और भी बेचैन हो उठा। सिपाही—पलटन के साथ रानी और दीवान का आना उसे नागवार गुजरा। रानी पर उसे भरोसा था, पर चकनाली दीवान के आतंक से सदा सशंकित रहता था। पर विवाह के नए आयोजन के प्रति रानी की चुप्पी देखकर उसका मन उद्विग्न हो रहा था। यही प्रमुख कारण राजधानी से उसके भागने का था। और इसीलिये वह रानी से भागना चाहता था। भाग चला जङ्गलियों के भीतरी गाँव की ओर—भयङ्कर पहाड़ियों और पथरीली पगडण्डियों से होते

हुए। दीवान का गुप्तचर घात में लगा ही हुआ था। अपने में डूबा दीप ज्यों ही एक घनी झाड़ी में पहुँचा कि फरसे का एक गहरा वार हुआ, और वह चिल्लाकर गिर पड़ा। पास ही के कन्दरे में कुछ जंगली परामर्श कर रहे थे। चिल्लाहट सुन कर झट से बाहर आ गये। गिरे हुए शिकार पर जैसे ही घातक ने दूसरा वार करना चाहा कि दौड़कर सब उस पर टूट पड़े, और काफी मरम्मत के साथ उसे बाँध, और बेहोश—घायल दीप को उठाकर सरदार के पास पहुँचे। अपने 'देवता बाबू' की ऐसी अवस्था देख, और घातक से सब हाल जानकर पहले से ही प्रति-हिंसापीड़ित जंगलियों का क्रोध और भी उबल उठा। जंगी ने जङ्ग का बिगुल बजा दिया। निश्चित संकेत के अनुसार गाँव-गाँव से हज़ारों की तायदाद में जंगल निवासियों ने 'शिकार महल' पर धावा बोल दिया।

दुपहरी के बाद का समय है। एक बड़े वटवृक्ष के तने से ढासना लगाये जङ्गलियों का गुरु जुगेसर काका बैठा है। पास ही बरछा ताने जङ्गी सरदार खड़ा है रोब के साथ। बीच में रानी, दीवान, विजय, लीला, राजीव, और उसकी मौसी तथा सिपाहियों को घेर कर कई हजार जंगली—हाथों में फरसा, भाला, धनुष-कमान लिए—खड़े हैं—बातचीत चल रही है।

जुगेसर—'हाँ तो दीवान' अब सिर्फ यह बता दें, मीनागढ़ की प्रजा—खास कर हम लोगों—पर किसके हुक्म से अत्याचार होता है ?'

जंगी—'बस, यही आखीरी सवाल है। इसके बाद जो होना है, वह होकर ही रहेगा। अब तक तुम लोग हमारे भाग्य का फैसला करते रहे, आज हम लोग तुम्हारे भाग्य का फैसल करेंगे।'

दीवान थका हुआ—परेशान नजर आ रहा था। जंगलियों के प्रश्नों के उत्तर देते-देते नहीं शायद, बल्कि अपने को हर तरह अपमानित और हर तरह घिरा हुआ पाकर। उसका सारा क्रोध, अभिमान, रोब, राज्याधिकार—मद जैसे लुप्त हो चुके हों। खूं-ख्वार शेर लाचार हो चुका था। सबसे दुख की बात उसके लिये यह हुई कि रानी की आज्ञा से सेना ने हथियार डाल दिये थे। दीवान आखिरी झपट्टे की सोच रहा था। जंगी ने कड़क कर फिर पूछा—

"क्यों दीवान, जवाब देते हो या नहीं?"

जुगे०—'नहीं तो हम तुम्हारी इस चुप्पी को ही जवाब समझ लेंगे!'

विषदन्त तोड़े हुए नाग की तरह—धीरे-धीरे सर उठाकर—शायद जीवन में पहली बार—कोमल आवाज में—दीवान ने अन्तिम ब्रह्मास्त्र छोड़ा—'भाइयो, मैं आपके इस सवाल का क्या जवाब दूँ? मछली फँसानेवाली बंसी की डोरी रहती है शिकारी के हाथ में। मछली का भोग लगाता है वही या उसके अपने—सगे, लेकिन बंसी बेचारी सिर्फ बँधी हुई होने के कारण बदनाम

है। वही हाल किसी राज्य के दीवान या मंत्री का है। आप—हमारे—जंगली भाई इतने नासमझ नहीं कि इतनी मोटी सी बात भी न समझें।'

दीवान के उस कूट-उत्तर से जंगलियों में एक विचित्र हलचल मच गई! हर तरफ़ काना फूँसी और धीरे-धीरे वाद-विवाद का हलका कोलाहल होने लगा। जंगी ज़ोर से कुछ बोला। इस पर फिर वही सन्नाटा छा गया।

जुगे०—'तो तुम जो कुछ भी करते हो, किसी के हुक्म से?'

दीवान—'तो क्या मीनाघाट का राजा मैं हूँ जो अपने हुक्म से कुछ करूँगा?'

जुगे०—'घुमाकर कहना छोड़ो, साफ़-साफ़ बतलाओ—कौन है जिसका इस राज्य में सब तरह का हुक्म चलता है?'

दीवान—(झिझकते हुए, रानी की ओर बताकर) 'रानी को छोड़कर और कौन हो सकता है?'

इसके बाद जंगी के ताली बजाने पर एक ओर से घातक को बाँधे हुए दो जंगली और सर तथा हाथों में पट्टी बाँधे दीप ने प्रवेश किया। दीवान की रही-सही आशा भी जाती रही। उसका दाँया हाथ पाकेट से जा लगा। दीप ने मुस्कुराते हुए कहा—

'जय हो दीवान जी, एक सवाल मेरा भी है। क्या यह घातक भी रानी की आज्ञा से ही मुझे मारने को आपने भेजा

था ?' इस पर दीवान ने झट पाकेट से पिस्तौल निकाल कर दीप पर चला दिया। साथ ही जंगी सरदार का बरछा भी चमका। गोली सनसनाती हुई बेलाग निकल गई, किन्तु बरछा खच् से दीवान की छाती फोड़कर पीठ में निकल गया। अभागा आह भी न कर सका, सारे दाँव-पेंच को समेटकर कटे वृक्ष की तरह गिर पड़ा।

११

कहानी खत्म हुई। और जो कुछ शेष हो, पाठक कल्पना से पूरी कर लें।

कहानी

डबल डाका

असहयोग-आन्दोलन के आरम्भ में जब क्रान्ति-दलवाले अपनी गुप्त कार्यवाहियों से हलचल मचाए हुए थे, उस समय के एक 'इन्फौर्मर' जो स्वदेशभक्तों के विरुद्ध ब्रिटिश-पुलिस को गुप्त खबरें पहुँचाया करता था, की मजेदार कहानी है, १९२५ के 'हिन्दूपञ्च' कलकत्ता, में प्रकाशित हो चुकी है।

—एक—

आज शहर में अजीब हलचल है। लोगों की जबानों और कानों पर एक ही चर्चा है। चौक से झील की ओर जो सड़क गई है, उस पर सैकड़ों की भीड़ लपकी जा रही है। मोटरों, साइकिलों, तांगों और गाड़ियों का ताँता बँध रहा है। असलियत जानने की इच्छा से एक परदेशी ने चौक के एक हलवाई-जो तीन-चार साथियों सहित गांजे का दम लगा रहा था-से पूछा—'भाई यह कैसी चहल-पहल है?' उसने उत्तर दिया—'अजी महाशय, डाकू पकड़े गये हैं। नगर के नामी दारोगा भुटकुन सिंह और उनके नायब ने पकड़ा है। उन्हीं को देखने लोग दौड़े जा रहे हैं। (दम मारकर) हम भी घटनास्थल से ही आ रहे हैं। बड़े जबरदस्त डाकू हैं साहब! पूरे पचहत्थे जवान-डेढ़ डेढ़ बालिस की मूँछें-हाथों में साढ़े तीन-तीन हाथ के पिस्तौल हैं और······'

परदेशी बात काट कर बोला—'साढ़े तीन हाथ के पिस्तौल? यह तो बंदूक से भी बड़ी हुई!'

हलवाई—नहीं जी, है तो पिस्तौल ही। बात यह है कि जैसे जवाँमर्द डाकू वैसे ही उनके हथियार भी हैं।'

हलवाई का दूसरा साथी बोला—'जमादार साहब कह रहे थे, बड़ी मुश्किल से असामी पकड़े जा सके हैं।'

परदेशी—'आप लोग बना रहे हैं, डाँकू पचहत्थे जवान हैं फिर गिरफ्तार किस तरह हुए ? क्या आप लोगों ने आँखों से देखा ?'

हलवाई—'तो क्या झूठ कह रहे हैं। अभी घंटा भी तो पूरा नहीं हुआ है। हम तीनों साथी झील से स्नान कर लौटे आ रहे थे कि पास के जङ्गल से गोली छूटने की आवाज़ आई। दौड़कर वहाँ पहुँचे तो देखकर दंग रह गये।'

परदेशी—'क्यों-क्या देखा ?'

हलवाई का दूसरा साथी—'देखने का ताब ही कहाँ रहा भाई साहब ! (दम लगाकर) दिमाग़ ही चकरा गया।'

तीसरा साथी—'वाह, डाँकुओं के बहत्तर नली पिस्तौल के निशाने को, दारोग़ाजी के एक-सौ-पचीस नली वाले पिस्तौल के निशाने किस सफ़ाई से काट रहे थे कि वाह रे वाह !!'

जिज्ञासा-तृप्ति के बदले, गंजेड़ियों की बेसिर-पैर की बातों से बेचारा परदेशी घबरा कर उठ खड़ा हुआ। मसखरों ने शिकार हाथ से निकलता देखकर बोल कसना शुरू किया—

हलवाई चिल्लाया—'यही है, यही है, पकड़ो जाने न पावे'—

दूसरा साथी—'रस्सा तुड़ाकर भागा जा रहा है।'

तीसरा साथी—'काटेगा, बाँध दो खंभे में।'

अब तो परदेशी को भागने के सिवा दूसरा चारा नहीं रहा। लपका बेचारा एक ओर। गँजेड़ियों ने भी

जोरों से चिल्लाना शुरू किया। झील की तरफ़ झटकती हुई भीड़ का एक हिस्सा इस ओर भी आकर्षित हुआ। सबकी दृष्टि भागते परदेशी और गँजेड़ियों की ओर जमने लगी। लोग रुकने लगे। सड़क जाम हो गई। इतने में ही, उधर से, बड़े जोरों से टनटनाती हुई साइकिल की घंटी और घबराये हुए कर्कश स्वर से 'बचो' 'हटो' की आवाजें सुनाई दीं। जब तक लोग बचें-सम्हलें कि धक्कों से बल खाती-लोगों को ठोकरें लगाती हुई एक साइकिल धड़ाम से हलवाई की दूकान से जा टकराई। और उसके डबल—अलबेले सवार मिठाई के ढेरों का भुरकुस बनाते, थालों को झन-झनाते, तख्तों को उलटते-पलटते धमाक से तले-ऊपर-नीचे की नाली में जा पड़े। ठहाकों की गोलबारी छूटने लगी। कठिनाई से लोगों ने दोनों सवारों को उठाया। एक थे दारोगा मुटकुन सिंह। तमाम वर्दी कीचड़ में सन गई थी। साफ़ा अंजर-पंजर ढीले किए हुए दर्शकों का फुटबाल बन रहा था। साइकिल बेतरह ज़ख्मी होकर उत्सुक भीड़ के पैरों को ज़ख्मी बनाती पड़ी थी। दूसरे सवार थे दारोगा जी के गोयन्दा पं० नरछुन तिवारी। दोनों के सर, कंधों, कमर, और टांगों में कड़ी चोट आ गई थी। शरीर कई स्थानों पर खुरच गया था। कहीं-कहीं से खून भी बहने लगा। फ़ौरन ही पुलिस के कई जवान आ गये, और घायल देवता को दूत सहित उठा ले जाकर सेवा-सुश्रूषा करने लगे।

—दो—

श्रीमान् नरकुल तिवारी 'अपटुडेट'—प्रदर्शनी के एक ख़ासे जीव हैं। वैसे पढ़ने-लिखने से आपका उतना सरोकार नहीं रहा, मगर अंगरेज़ियत के ऊपरी क़ायल ज़रूर हैं। मतलब यह कि वेश-भूषा, बोल-चाल और ढंग-ढब में तिवारी जी अंगरेज़ों की नक़ल की नक़ल उतारने की सदैव असफल चेष्टा करते रहते हैं। प्रायः खान-पान भी कुछ वैसा ही है। हलाँ कि इसमें आपका विशेष खर्च-वर्च नहीं होता। बा० भुटकुन सिंह दारोगा खिलाये जाते हैं। परन्तु हैं आप ब्राह्मण सपूत। घर पर स्नान, टीका-चन्दन, पूजा-पाठ के अतिरिक्त लघुशंका आदि के समय कानपर जनेऊ चढ़ाना बहुत कम भूलते हैं। इनके पिता पंडित तिरासन तिवारी यजमानी-वृत्ति के अलावा, कुछ वैद्यक का कारोबार भी कर लेते हैं। छोटे तिवारी प्रगट में तो बाजार की अनेक वस्तुओं की दलाली करते हैं, परन्तु गुप्त रूप से पुलिस में 'इन्फोर्मर' हैं—दारोगा भुटकुन सिंह के तो ख़ास गोयन्दा हैं। इसलिये, इधर-उधर की छोटी-से-छोटी खबरें भी अपने सरदार को पहुँचाने में नहीं चूकते। कभी-कभी अपना उल्लू सीधा करने के लिये, निरप-राधों को भी आप सताने से बाज नहीं आते। किसी को किसी से बदला लेना है, बस तिवारी जी उसके काम आ जाते हैं। इन कारणों से लोगों का नाक में दम हो रहा है।

पुलिसके भय से, प्रतिकार का कोई उपाय किसी से नहीं

बन पड़ता। इसीसे तिवारीजी की तिकड़म का सितारा खूब तेजी पर है। अन्त में जब हद हो गई तो कुछ मनचले साहसी युवकों ने आपस में विचार-विमर्श करके एक मजेदार उपाय सोच लिया।

—तीन—

होली की नशीली संध्या का सुहावना समय था। उन्मत्त वायु की हलकी लहरियाँ पेड़, पौधे, पुष्पों और कलियों के साथ कुछ अजीब ढंग से अठखेलियाँ कर रही थीं। आकाश-पट पर मिलन और वियोग का अपूर्व दृश्य अंकित हो रहा था। कालिका-निशा ने बिछुड़ते से—निस्तेज दिनपति का दामन दबोच रखा था। श्याम और गौर के इस अद्वैत—आनन पर मानो अबीर की लाली निखर रही थी। कवियों और प्रेमियों के दृष्टिमात्र में यह स्वर्गीय-सुषमा जैसे प्रसाद बाँट रही हो। परन्तु, कीच-कीटों को इसकी क्या खबर? पंडितप्रवर तिवारी जी महाराज भी अपनी मर्म-धुन में ध्यान लगाये, इसी समय घोंसले के बाहर निकले। अपने पूज्य पिताजी द्वारा शकुन—लग्न देखकर चले थे। इष्ट-देव का मन-ही-मन जाप करते जा रहे थे कि आज कोई खासा शिकार फँसे। जैसे ही अपनी गली से सड़कवाली गली में घुसे कि एकाएक दो व्यक्ति बगलियाकर उनके आगे झट से निकल गये। तिवारीजी की जासूसी-चेतना तेज हो गई। उनके पीछे चुपके चुपके चल पड़े। कुछ ही दूर आगे जाने पर, वे दोनों एक

खाली मकान के दालान में घुस पड़े। तिवारीजी ने दीवार की आड़ से, ज़रा-सा झाँककर देखा। दोनों कपड़े बदलकर, चेहरे में नक़ली दाढ़ी-मूँछ लगा रहे थे। ये फुर्ती से से पीछे हट गये! इनके जी में जोश का तूफान आपे से बाहर होने लगा। इतने में ही दोनों व्यक्ति वहाँ से निकल कर आगे बढ़े। तिवारी जी धड़कते कलेजे को दबाकर, गुप्त रूप से लगे उनका पीछा करने। कई गलियों और सड़कों को पार कर वे एक उजाड़ मुहल्ले के एक मकान में घुस गये और द्वार भीतर से बन्द कर लिया। तिवारीजी भी धीरे-धीरे जासूसी चाल से चलते हुए किवाड़ से कान लगाकर खड़े हो गये। अन्दर, दोनों में इस प्रकार बातें होने लगीं।

एक—'अच्छा हुआ किसी ने हम लोगों पर सन्देह नहीं किया।'

दूसरा—'सन्देह करता कैसे? हम लोग सावधानी से जो चल रहे थे। अच्छा भई, यह तो बतलाओ, नरछुल तिवारी सचमुच पुलिस का गोयन्दा है?'

दूसरा—"हाँ, मुटकुन सिंह दारोगा को, इधर-उधर की खबरें पहुँचाता है।"

एक—"तब तो, उसे भी खत्म करना होगा।"

दूसरा—"जरूर करना होगा। मगर, पिस्तौल चलाने का अभ्यास कर लेना चाहिये।"

एक—"सोच लिया है, कल ठीक दस बजे दिन में हम

लोग सिकन्दरपुर के झीलवाले जंगल में चलें। वहीं गढ़े के पास चानमारी की जाय।"

दूसरा—"मगर गोलियों की आवाज सुनकर कोई आ जाये तो?"

एक—"ऊँह! एक तो वह स्थान शहर से दूर है, तिस पर मीलों तक जंगल ही जंगल है। अगर कोई आया भी तो ऐसा गायब हो जायेंगे, कि पता लगाना मुश्किल।"

दूसरा—"बस, तब यही ठीक रहा।"

बाहर, तिवारीजी की हालत खुशी, डर, आश्चर्य और उमंग के मारे बदतर हो रही थी।

"ओह! ऐसी रहस्यपूर्ण खबर! जूते खोलवाऊँगा आज झुट-कुन से!" उद्वेग के मारे शीघ्रता से, उड़ते हुए चल पड़े। अँधेरा काफी हो चुका था। रास्ता ठीक से नहीं सूझता था। मगर तिवारी जी के पैर की लगाम बेतरह ढीली हो पड़ी थी। कुछ दूर आगे चलने पर एकाएक एक जगह की ऊबड़-खाबड़ में आपका चरण-कमल इस तरह फँसा कि धड़ाम से उलट कर जमीन सूँघने लगे। चोट भी काफी लगी। टाँगों में मोच आ गयी। मगर, उत्साह के वेग में तकलीफ को उड़ंछू कर सम्हल कर फिर आगे बढ़े। सोचते चले कि "ऐसी अद्भुत खबर है। चलूँ, सीधे कलक्टर साहब के पास। नहीं नहीं; पुलिस के बड़े साहब के पास ही चलना ठीक है।"

फिर ध्यान आया कि "भुटकुन दारोगा से इतने दिनों की खास कर दफ्तरखानी—दोस्ती है। बेचारे का नाम हो जायेगा; इनाम मिलेगा। मेरी भी चाँदी रहेगी। चलूँ उसे ही खबर दूँ।"

यही सोचते हुए आप जैसे ही गली पार कर सड़क पर आना चाहते थे, कि कूड़े की टीन से बेतरह टकरा गये। जब तक सम्हलें, तब तक औंधे मुँह गिर पड़े, और ऊपर से टीन का सारा कूड़ा फैल गया। मारे बदबू और चोट के बेचारे अधमरा हो गये। कुछ सेकन्डों तक उसी तरह प्राणायाम करते रहें। फिर, झाड़-झूड़ कर किसी तरह खड़े हुए। तबीयत झुँझलाई, तो लगे म्युनिसिपेल्टी वालों का गोत्रोच्चार करने। तकलीफ़ के मारे उछल-चाल से चलना कठिन मालूम पड़ा। मगर, ध्यान में आया कि जासूसी—कहानियों में इससे भी बढ़-चढ़ कर जासूसों पर कठिन विपत्तियों की बातें पढ़ी हैं। तब मन को दिलासा देने और गर्व अनुभव करने लगे। उत्साह की स्फूर्ति आ गई। फिर सोचा, घर से कपड़े बदल लूँ, तब दारोगा जी के यहाँ चलूँ। मगर थे आप अक़िल के पटपट। ख़्याल आया, कि इसी तरह चलने से कुछ और ही प्रभाव रहेगा। बस, सीधे मुँह फेरा थाने की तरफ़। जैसे ही कुछ दूर आगे बढ़े कि एक लड़के ने जो इनकी विचित्र सूरत देखी तो डर के मारे 'भूत-भूत' चिल्ला उठा। चिल्लाहट सुनकर, पास-पड़ोस के और कुछ राहगीरों ने इन्हें घेरा। तिवारीजी नई आफ़त देख कर भाग चले। लोगों ने खदेड़ना शुरू

किया। गनीमत हुई कि थोड़ी ही दूर पर दारोगाजी का मकान था। तिवारीजी बेतहाशा दौड़ते हुए उस कमरे में जा पहुँचे, जिसमें दारोगाजी का लड़का स्कूल का पाठ याद कर रहा था। इनको एकाएक भूत की तरह पहुँचते देख, वह जोरों से डर कर चिल्ला उठा। उसी समय बाहर की भीड़ ने भी पहुँचकर हल्ला मचाना शुरू किया—"भूत है भूत। चोर है, चोर—दारोगा जी!" तब तक कई नौकर, सिपाही और खुद दारोगाजी दौड़ पड़े और भूत को पछाड़ कर उसका भुरकुस निकालने लगे। तिवारी कँहर कँहर कर चिल्लाने लगे—"बाप रे बाप, दादा रे दादा—दारोगाजी बचाइये······हम हैं तिवारी······।" दारोगा ने गौर से पहचाना तो बोल उठे। "ओह, बड़ा धोखा हुआ; छोड़ो छोड़ो, यह तिवारी हैं······हमारे खास आदमी।"

तब तक नरदुत की काफी दुर्गति हो चुकी थी। इतनी कस कर मार पड़ी कि न पूछिए। दारोगा ने सोचा, कम्बख्त को मरना ही था तो मेरे यहाँ क्यों आया। घबराकर डाक्टर को बुलवाया। मरहम-पट्टी की गई। टॉनिक-डोज के अलावा इन्जेक्शन भी किया गया।

कुछ देर बाद, तिवारी जी की तबीयत कुछ हरी हुई। तब बड़े तपाक के साथ यथोचित नमक-मिर्च मिलाकर सारी बातें सुनाने लगे। सुनते ही दारोगा जी खिल गये। कोस्त को गाले

लगा लिया। इसके बाद दोनों बहुत देर तक मन्सूबे बाँधे और मन के लड्डू खाते रहे।

दूसरे दिन सवेरे आठ ही बजे जंगल में गुप्त पहरा पड़ गया। दारोगा जी और तिवारी जी पिस्तौल लिये मौके की ताक में रहे। जमादार तथा १५ सिपाही, लम्बी लाठियाँ पकड़े छिट-पुट दबके हुए थे। ठीक दस बजते-बजते, दो नवयुवक भीलवाली पगडंडी से जंगल के बीचवाले मैदान में पहुँचकर इधर-उधर देखते हुए गड्ढे के किनारे जा बैठे, और मेढ़कों का तमाशा देखने लगे। फिर पॉकेट से पिस्तौलें निकालकर दोनों ने अपने-अपने बगल में जमीन पर रख लिया। बड़ी सावधानी से धीरे-धीरे पंजों के बल चलकर सिपाहियों ने एकाएक नवयुवकों को घर दबाया। दारोगा और तिवारी ने दोनों की मुश्कें कस लीं। पिस्तौलों को बिना जाँचे-समझे, बड़ी सावधानी से रूमाल में लपेट लिया गया। फिर निश्चय हुआ कि बड़े साहब को झट से खबर दी जाये, तब तक डाकू यहीं, कड़े पहरे में रहें। ऐसा ही किया गया।

जमादार सिपाही पहरे पर रहे, और तिवारी को पीछे लादकर दारोगा जी साइकिल पर उड़ चले। तब तक न जाने कैसे बिजली की तरह शहर भर में इस अनोखी घटना की खबर फैलने लगी थी। उत्सुक जनता की भीड़ घटनास्थल की ओर उमड़ उठी। उसी में डबल-साइकिल सवार की कलाबाजी का दृश्य पहले ही देखा जा चुका है।

पुलिस के बड़े साहब को जैसे ही खबर हुई, फौरन मोटर द्वारा

असामी को थाना पहुँचा आए। अस्पताल में गुटकुन और तिवारी से मिलकर बड़ी प्रसन्नता प्रगट की। साथ ही तरक्की और ईनाम का आश्वासन भी दिया।

—पाँच—

दूसरे दिन पेशी हुई। आज दारोगा जी और तिवारी जी का क्या पूछना! मानों आकाश पर चढ़ रहे हों। इनकी आज की अनोखी मुद्रा का वर्णन करना किसी मसखरे कवि का ही काम है। दारोगाजी ने, बड़ी सावधानी से साफा बाँधा। तोंद की शरारत और कुछ जल्दीबाजी से, रह-रहकर कोट के बटन खुल जाने लगे, तो आप बड़े झुँझलाए। दो चार होलैया सुना दी। चलते समय दारोगाइन ने बहुत दिनों की चुप्पी के बाद मुसकराहट के नजराने के साथ अपने हाथ से पान चभाया। दारोगा जी घोड़े पर सवार होकर कचहरी चल पड़े। इधर तिवारी जी ने विचित्र फैशन में अपने को सजाया। चुस्त पाएजामें के ऊपर काले रंग का हौस पायजामा चढ़ाया। आँखों में बूढ़ी चाची से काजल कढ़वा कर रंगीन चश्मा लगाया। गले में रेशमी रूमाल लपेटा, माथे में चन्दन पर लाल बिन्दी चमकाई। कन्धे पर दादा जी के समय का रंगीन दुशाला, हाथ में मिर्जापुरी लट्ठ, और सिर पर हैट रखा। यह इसलिये कि धूप कड़ी थी। छाता बाबूजी कहीं ले गये थे। मगर पाकेट में मोड़-माड़ कर फिल्डकैप भी रख लिया, कि इजलास पर जाते ही हैट उतार कर इसे पहन

लूँगा। घर की प्रदर्शिनी का एक खास नमूना---उनके पिताजी का विवाहवाला कामदार दिल्लीवाला जूता था; बस उसे पहनकर, एक बार आईने में अपना नूरानी चेहरा और लासानी फैशन देखकर गद्गद् हो गये। बाजार में रोब के साथ इधर उधर ताकते चले। लोग इनकी विचित्रता पर—इनकी ओर देख कर मुस्कुराते, तो यह उन्हें मूर्ख समझते थे कि 'आज मेरा फैशन देखकर सभी दाँतों उँगली काट रहे हैं। मगर अभागे नहीं जानते कि यह मेरा खास खुफिया वेश है।' अँकड़ते हुए कचहरी पहुँचे।

इजलास के बाहर भीड़ का क्या कहना है! डाकुओं को देखने के लिये जनता का जैसे नर-समुद्र उमड़ उठा हो। पुलिस को रह-रह कर लाठीचार्ज करने तक की नौबत आ जाती थी। इजलास के अन्दर की तमाम बेंचें भरी थीं। प्रेस-रिपोर्टरों के अलावा, अनेक सम्भ्रान्त दर्शक भी मजिस्ट्रेट की आज्ञा लेकर कार्यवाही देखने-सुनने आये थे। जैसे ही असामी पुलिस के कड़े पहरे में लाये गये, बहुतों ने युवकों को पहचान लिया। एक था प्रो० रमेश चन्द्र का लड़का दिनेश, दूसरा सुप्रसिद्ध वकील चन्द्रशेखर नारायण का लड़का शशांकशेखर था। दोनों कालेज के चुने हुए विद्यार्थियों में से, और नवयुवक नाटक समिति के प्रमुख पात्र थे। मुस्कुराते हुए युवकों ने परिचितों को प्रणाम किया। चन्द लोगों ने समझा शायद ये लड़के क्रान्तिदल में होंगे। तब तक पेशी शुरू हो गई। मजिस्ट्रेट ने अभियुक्तों के नाम-धाम-काम

पूछे। पेशकार ने रूमाल से खोल कर पिस्तौलों को साहब के सामने कर दिया। साहब ने युवकों से पूछा—"इन्हें कहाँ से लाये ?"

एक युवक—"नवयुवक नाटक समिति से !"

मजि०—"जंगल में क्या करने गये थे ?"

दूसरा युवक—"एक नाटक का रिहर्सल करने !"

मजिस्ट्रेट ने एकाएक पिस्तौलों में क्या देखा कि भड़क उठे "डेंम...इन्सपेक्टर, नकली पिस्तौल हैं ? असामी रिहा......"

कहानी

सनीचर देवता की पूजा

समाज के एक सनीचर देवता की मनोरंजक-पूजा का सुन्दर वर्णन है। 'जागरण', 'काशी' और 'मारवाड़ी अग्रवाल', कलकत्ता, में प्रकाशित।

[प्रथम विधि]

सेठ धमधूसर लाल जी, ऊपर से नीचे तक जिस प्रकार कुछ स्थूलकाय हैं, उससे कहीं चढ़-बढ़ कर उनमें बुद्धि का अजीर्ण है। हाथी के बच्चे की तरह छोटी-छोटी टाँगों के ऊपर मटकेसा पेट, दरियाई कमण्डल की तरह सिर, उर्दू कविता की नाजनीन की कमर की तरह गरदन नदारद। और इसी प्रकार मुँह, नाक, आँख, कान, भौंह आदि की भी अजीबो-गरीब-गठन देखने ही लायक है। विधाता की हास्यप्रियता का खासा नमूना-मानव-प्रदर्शन की अद्भुत वस्तु ही समझिए। जिस समय वसुन्धरा की सूखी छाती पर, आपके युगल चरण रोलर की तरह लुढ़कते हैं, वर्णन से बाहर—दर्शनीय दृश्य होता है। जिस समय खुले बदन आप साँस लेते या कहीं सौभाग्य से हँस पड़ते, तो पेटरूपी मटके की तूफानी उछल-कूद, भूमण्डल के भूकम्प का संक्षिप्त संस्करण बन जाती। चलना आपके लिये जितना कठिन था, उससे बैठना कहीं कष्टकर था। हरदम लाश की तरह पसरे ही रहते थे। पुराण-प्रसिद्ध-समाधिस्थ योगियों की जटाओं की तरह, आपके बालों, वस्त्रों और बिछावन वगैरह में अनेकानेक कीटाणु-कीट बारहों मास क्रीड़ा करते रहते। लोगों को आप इतने अधिक याद हैं कि सबेरे-ही-सबेरे नाम तक लेना अनुचित समझा जाता है और अगर कहीं दर्शन हो जाये तो दर्शनार्थी समझ लेता है कि उस दिन के पापों का उसी दिन भर पूर प्रायश्चित्त हो जाएगा। समाज-सुधार के आप सवा-सोलह

आने सनीचर हैं। सामयिकता और आधुनिकता से आपको उतनी ही सख्त नफरत है, जितनी सफाई और फिजूल खर्ची से। सामाजिक-यातना-यम-लोक के आप एक दनंग-दूत हैं। कंस के अत्याचारों की तरह रूढ़िवादी-क्रूरताओं की श्रीवृद्धि के लिये आप इस समय की नारदीय विभूति हैं। समाज का गला आपने इतने जोरों से टीप रखा है कि उसका नाश और पुनर्जन्म निश्चित है। आपकी जबान और सलाह में वह डंक है, जिसका उपचार नहीं। आपके इस भयानक दंशन से कितने ही बेमौत मरे—और प्रायः मरते रहते हैं। व्याह में, श्राद्ध में, पञ्चायत में, काम में-काज में, मतलब यह कि प्रत्येक व्यावहारिक परामर्श में आपके नक्कारखाने के आगे दूसरों की तूती की आवाज मन्द पड़ जाती है। यही कारण है कि बिरादरी में आपकी पूरी धाक है। सभी डरते रहते हैं। मगर कुछ आप ही सरीखे कूढ़-मगजों को छोड़कर, दूसरे सभी लोगों का दिल भीतर-ही-भीतर त्रसित हो उठा है। खास कर नवयुवक-समाज आपको फूटी आँख नहीं सुहाते। उनसे कहीं अधिक उनकी आँखों में आप भी जहरीले तीर हैं। बिचारे नवयुवक मन मसोस कर रहते, और अपनी असमर्थता पर चार आँसू रोते। कभी-कभी संघर्ष भी हो जाता। आखिर नया खून ही तो ठहरा। तिस पर क्रान्ति का जमाना!!—विचार होने लगा कि अब दूसरे हथियारों से काम लिया जाय।

जगदीश ने कहा—"यार! यह मूजी तो बड़ा अनर्थ कर रहा है, कुछ उपाय होना चाहिये।"

कैलाश ने कहा—'खूब बनाया जाये बच्चू को, ऐसा कि जन्म भर याद रखें।'

रामप्रताप ने कहा—"हाँ भाई, हमलोगों की सभा-समितियों को कभी एक पैसा नहीं देता, उलटे विरोध करता रहता है।"

सोहन ने कुछ देर तक सोच कर कहा—"

"अच्छा तो रहे इस बार होली में। रुपये भी वसूल किये जायें और छकाया भी जाये ऐसा कि कम से कम कुछ दिनों तक तो डंक अवश्य ही कमजोर पड़ जाये।"

[दूसरी विधि]

दिन भर उपद्रव मचा लेने के बाद रात की चढ़ती जवानी में होली की आग जलाकर बाजारके लोग 'नवयुवक समिति' का नाटक देखने लगे। करीब साढ़े तीन बजे रात में अभिनय समाप्त हुआ। दर्शक होलीया गाते, पारस्परिक छेड़छाड़ करते, सोतों को जगाते, अपने-अपने घर जाने लगे। पर्दे और नाटकीय सामान वगैरह यथास्थान सरिया देने के बाद, सोहन भी अपने चंचल सखाओं के साथ, घर रवाना हुआ। सेठ धमधूसर लाल का सब से छोटा लड़का तिलौड़ीलाल भी, मण्डली की तबीयत बहलाता जा रहा था। प्रातःकाल की सुफेदी छिटकने में अभी देर थी। कुछ अँधेरा था। थोड़ी दूर साथ चलकर अधिकांश लड़के अपने-अपने घर चले गये। सोहन और उसके तीन-चार साथी जिनके मकान उधर ही थे, धमधूसरलाल के पास वाली गली में

पहुँचे। तिलौड़ी लाल को अपने दरवाजे की ओर बढ़ते ही पैरों में किसी ठंडी चीज़ का स्पर्श हुआ। उसके मुँह से एक हलकी सी घबराहट की आवाज निकली। सब चौंक गये। प्रकाश ने टार्च का प्रकाश किया। देखा गया कि वह चीज़ सफेद कपड़ेमें खून से तरबतर कोई लाश की तरह है। अब तो तिलौड़ी की दहशत-का क्या पूछना! चिल्ला उठा। इतने ही में ऊपर की खिड़की खोल कर उसके बाप ने पुकारा—कौन है? सोहन ने आवाज़ दी —"जरा नीचे उतरिए, भारी घटना हो गई है।" क्षण-भर में हाँफते-लुढ़कते सेठजी आ पहुँचे। टार्च की रोशनी में जैसे ही उनकी दृष्टि लाश पर गई तो मारे भय के इस तरह पीछे हटे कि गिरते-गिरते बचे, और मुँह से एक कर्णकटु चीख़ निकल पड़ी। प्रकाशक-ने कहा—"सेठजी, यह क्या बात है? अगर आपने किसीको ऐसा दण्ड दिलवाया है, तो लाश कहीं दूसरी जगह फेंकवा देते।" घबराते हुए-बात काट कर उन्होंने कहा—"अरे छोकरा, तू मुझे फँसाना चाहता है? भगवान् जानते हैं—गंगा की शपथ, मैं कुछ नहीं जानता।"

सोहन—"मगर जनता और पुलिसवाले तो यह सब कुछ नहीं समझेंगे। आपके मकान के पास लाश मिली है, इसलिये सबोंका सन्देह आप ही पर होगा।"

किशोरी—"और हम लोग झूठ बोलेंगे नहीं, सच-सच बताना ही पड़ेगा, नहीं तो आफ़त आ सकती है।"

अब तो मारे भय के धमधूसरलाल की जान निकलने लगी। विचारे दरवाजे पर धम से बैठ गये, और दोनों हाथों सिर दबाने लगे। सोहनने प्रकाश से कहा—"जाओ, दौड़ते हुए थाने में खबर दो कि यहाँ खून हो गया है।" प्रकाश जाना ही चाहता था कि सेठजी ने मेढक को तरह छलाँग मार कर पकड़ लिया, और बोले—"नहीं बेटा, ऐसा मत करो। मैं कहीं का न रहूँगा। पुलिस को न बुलाओ, किसी तरह लाश को हटा दो; जो कहोगे, करने को तैयार हूँ।"

सोहन—"हाँ, इस समय वक्त पड़ा है तो क्यों न ऐसा कहियेगा। आप बराबर हमलोगों का—क्या, सभी अच्छे कामों का—विरोध करते आ रहे हैं। हम सेवासमिति के बालचर हैं, इसलिये पुलीस को तो बुलाना ही पड़ेगा। जाओजी प्रकाश, जल्दी खबर दो।" प्रकाश फिर उद्यत हुआ। अब तो सेठजी की बड़ी दयनीय दशा हो चली। उन्होंने सोहन और प्रकाश को पकड़कर बड़ी आजिजी से कहा—"देखो बेटा, तुम्हारे पिता से मेरी कितनी घनिष्ठता है। अब से मैं कभी तुम लोगों का विरोध न करूँगा...।" इतना कहते-कहते रोआसे-से हो गये। किशोरी को जैसे दया आ गई। उसने कहा—"सोहन भाई, जब यह इतना गिड़गिड़ा रहे हैं, तो ऐसा उपाय करो जिसमें यह भी बच जायँ और हमलोगों पर भी कोई आफ़त न आवे।"

बैजू ने कहा—"मगर कोई बखेड़ा आ ही जाय तो...?"

प्रकाश—"आखिर, जो मरा है, उसके घरवाले पता लगायेंगे ही। फिर तो हमलोगों को आफ़त में पड़ना ही पड़ेगा।"

सोहन—"एक उपाय है। अगर सेठजी इतना काफ़ी रुपया दे दें, जिससे हमलोग अपने बचाव के लिए हरदम तैयार रहें, तो अलबत्ता लाश हटा दी जा सकती है।"

सेठजी—"लो भाई अभी लो, दस-बीस रुपये क्या चीज़ है?"

सोहन—"वाह साहब वाह! इतनी बड़ी जोखिमके लिये इतना थोड़ा रुपया?"

प्रकाश—(ऊपर देखकर) "सेठजी जल्दी कीजिये, सबेरा होना ही चाहता है। फिर कोई आ गया तो आप जानिए।"

सेठ—"अच्छा अभी सौ रुपये ले जाओ, पीछे और ले जाना।"

किशोरी—"लाऊजी, तब तो आप ज़ाहिर हो जाइएगा, क्योंकि पुलिस हमलोगों के पीछे खुफ़िया लगा देगी। आपसे रुपये की सहायता की बात जान लेने पर...आप ही समझिए कि वह क्या ख्याल करेगी।" इतने में किसी तरफ़से खाँसने की आवाज़ आयी। सोहन ने कहा—"कोई आ रहा है; सेठजी जल्दी कीजिये। कम से कम दो हजार रुपये अभी दीजिए, नहीं तो अगर हमलोग खबर न भी देंगे, तो भी पुलिस को लाश का यहाँ रहना मालूम हो ही जायगा।" अन्त में बहुत 'ना' 'नू' करते और रोने-कलपने के बाद १५ सौ पर मामला

तय हुआ। सेठजी झट से घर में जाकर उतने के नोट ले आए। टार्च की रोशनी में जाँचकर सोहन ने पास में रख लिया और सेठजी को कहा—"आप अब भीतर जाइए, और जरा देर से दरवाजा खोलियेगा।" बिचारे हक्के-बक्के तिलौड़ीको बगल में दबा कर सेठजी अपने दरवे में बन्द हो पड़े। इधर, इन मसखरों ने लाश का स्वांग बनाया। अरथी में सजाकर 'राम नाम सत्य है' कहते हुए बाजारों में फिरने लगे। इतने में प्रातःकाल हो गया। सूर्य भगवान के दर्शन हुए। लोग सड़कों पर धुरखेली का उपद्रव मचाने लगे। बहुत से मुर्दे के स्वांग में सम्मिलित होकर गंगाजी तक गये।

दोपहर के बाद भमधूसरमल को पता चला कि लाश नक़ली थी और वह बेतरह ठगे गये !!

—o—

[तीसरी विधि]

महीनों तक लोग उनकी सूरतको—भरपेट—तरसते रहे। बस, धड़ी भर दूकान पर अपनी अनुपम झलक दिखाते, और नहीं तो घोंसले में ही घुसे रहते। अगर रास्ते में कोई मन की पूछता तो टाल देते या कहते कि "तबीयत खराब है।" फिर तुरन्त ही आगे लुढ़क पड़ते। देर तक किसी से बातें करने का उनका जी नहीं चाहता। सब—बाहरवालोंसे कन्नी कटाए रहते। पर-पञ्चायत में भी जाना-आना छोड़ दिया था। झुँझलाहट बढ़

गयी थी। घर के लोग परीशान थे कि इन्हें क्या होगा? अलबत्ता छोटे–सब से छोटे घमधूसरमल जानते थे, क्या कारण है। उधर नवयुवकों में जो नटखट थे, अक्सर रास्तों में प्रणामादि की आड़ में बिचारे को छेड़ दिया करते। कोई कहता—"जय रामजी की ताऊजी!" दूसरा कहता "राम राम, दादाजी!" इन मीठी चुटकियों से मन-ही-मन बिचारे तड़प जाते और, जिन ध्वनियों में सब को उत्तर देते–अथवा जिन प्रतिहिंसापूर्ण झेंप की हसरत भरी क्षणिक चितवनों से उन नटखटों की तरफ़ ताक कर नज़र चुरा लेते, उसका वर्णन करना किसी अक्खड़ कवि का ही काम है।

दो महीने बाद जैसे उनकी तबीयत ठीक हो गई हो। अब ठीक-ठिकाने से लोगों से मिलने-जुलने लगे। मगर भीतर-ही-भीतर घातक-ताक में लगे रहते कि कैसे उन दुष्ट युवकों से बदला लें। अधिक गुस्सा सोहन पर था। वही सबका सरदार था। हरदम यही चिन्ता उनके कलेजे को कचोटती रहती थी कि डेढ़ हज़ार रुपये ठगे गये। बाप रे बाप डेढ़ हज़ार...रुपये!! तिस पर वह ऐसे काम में खर्च होंगे, जिनके वे प्रबल विरोधी थे? अतएव सोते, जागते, खाते, पीते,—हरदम प्रतिहिंसा के कल्पना-जगत में विचरण किया करते।

एक रात की बात है। करीब ११ बजे होंगे। सेठजी किसी दूर के महल्ले से लौट रहे थे। अकेले ही थे। जल्दी के मारे सदर

छोड़कर गली के रास्ते आ रहे थे। उसी लेन में सेवा-समिति का दफ्तर था। जैसे ही पास पहुँचे कि खिड़की से किसी की मधुर—औरतनुमा आवाज़ आई—"प्यारे! मुझे छोड़कर और कहीं मत जाओ। तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ।" साथ ही कोई बोला—"हट चुड़ैल, मैं तुझे तनिक भी प्यार नहीं करता।" सेठजी को यह आवाज़ पहचानी हुई-सी जान पड़ी। ख्याल ने चौंका दिया कि अरे, यह तो सोहन है। फिर क्या था? प्रतिहिंसा-की अग्नि भधक ही रही थी, और भी प्रज्वलित हो उठी। सोचा, "सेवासमिति के कमरे में इतनी रात को कौन स्त्री सोहन से इस तरह बातें कर रही है। ज़रूर कुछ दाल में काला है।" कुछ और सुनने की अभिलाषा से खिड़की के नीचे साँस रोककर खड़े हो गये, पर सिवा कुछ अस्पष्ट वार्तालाप के और कुछ न सुनाई पड़ा। तब, दरवाजे के पास आये। देखा कि लाप-रवाही से उसके दोनों पल्ले भिड़ाए हुए हैं, और कुण्डी में ताला-चाभी लटक रहे हैं। दरवाजा खोलने की हिम्मत तो नहीं हुई, पर धीरे से कुंडी चढ़ा, और ताला में चाभी लगाकर फुरती से लोगों को ख़बर देने चल पड़े। सोचते जाते "इतने दिनों के बाद, आज बदले का अवसर आया है। साले को खूब सज़ा दिलवाऊँगा। ओह, कितना बड़ा ढोंगी और पापी है। बदमाश! सेवा-समिति में यह कुकर्म!!!" इस समय की इनकी फुरती देखने ही योग्य थी। जैसे सरकस का सिखलाया हुआ—छोटा

राजपुत्र दो पैर पर उछलता हुआ जा रहा हो। सबसे पहले सेवा-समिति के सभापति को जगा, नोन-मिर्च के साथ सारी बातें बताकर वहाँ चलने को तैयार किया। फिर चोकन्दर दास, लाला पापड़मल, गोबर गणेश चौभरो, बुकरातीलाल आदि ७-८ उस मुहल्ले के नामी-गिरामी लोगों, तथा नाकेसे जमादार और दो-तीन सिपाहियों को साथ लेकर सेवा-समिति के दफ्तर पर धावा बोल दिया। वहाँ पहुँचकर सभापति, इशारेसे सब को चुप रहने का आदेश देकर दरवाजे के पास-पास गये ही थे कि भीतरी कमरे से किसी औरत की आवाज आई—"हे भगवन्! मेरी रक्षा करो।" साथ ही किसी ने ज़ोर से कहा—"चुप हरामजादी!" अब क्या था? जो थोड़ी-बहुत शंका लोगों को थी, दूर हो गई! सभापति ने धीरे से ताला खोला और फुरती से किवाड़ों को हटा दिया। सब-के-सब भीतर हाल में जा पहुँचे। मगर सामने जो निगाह गई तो शर्मिन्दा और चकित हो रहे। सेठजी के काटो तो लहू नहीं। धम्म से धरती में लुढ़क गये। इन लोगों ने देखा कि सोहन बाएँ हाथ में किताब लिये खड़ा है, और उसके सामने एक लड़का घुटना टेके हुए है। कुछ दूर पर और ४-५ नवयुवक कुर्सियों पर चुप बैठे हैं। उन लोगों ने चौंक कर क्रोध-भाव से इन तरफ देखा। सोहन ने कहा—"इस तरह रिहर्सल में आप लोग एकाएक क्यों आए?" फिर सभापतिजी को देख कर प्रणाम किया। सभापति ने सोहन को शान्त

करते हुए लोगों से कहा—"भाइयों, सेठजी जैसे हैं, प्रगट ही हैं, मगर आज यह और भी जाहिर हो पड़े।" सबने सेठजी की ऐसी मानसिक मरम्मत की कि उनकी नानी मर गई। घृणा, क्रोध, अपमान और उपेक्षा की घनघोर वर्षा होने लगी। एक झूठी बात के लिये सोते से जगा कर लाना, लोगों का खून खोल रहा था। मगर सभापतिजी की वजह से सभी चुप रहे। जमादार साहब उन्हें पकड़ कर थाने में बन्द करने की ही फिक्र करने लगे। सोहन ने कहा—"हाँ जमादार साहब! ये हजरत समाज के ऐसे ही खतरनाक सनीचर देवता हैं, इनकी पूजा बड़े घर ले जाकर ही कीजिए। नहीं तो इसी तरह लोगों को सताते रहेंगे।" बिचारे धमधूसरजी की जो दुर्दशा हो रही थी, उसकी पाठक खुद कल्पना करें! अन्त में उन्होंने हाथ जोड़ कर—और शायद सच्चे मन से प्रतिज्ञा की कि फिर कभी ऐसी ग़लती न करूंगा; और न किसी अच्छे काम का विरोध ही करूँगा।" और इस कुकर्म के प्रायश्चित्तस्वरूप एक हजार सेवा-समिति को और पचीस रुपये पुलिस वालोंको देनेका वादा किया। फिर बड़े स्नेहसे सोहन का हाथ पकड़ लिया।

कहानी

बाबू मालिश !

शोख छोकड़ों की मनोरंजक मरम्मत। मीठी-मुस्कान पर सिनेमा-संसार की एक क्षणिक चमक। 'विश्वबन्धु', कलकत्ता, और 'तिर्हुत समाचार', मुजफ्फरपुर, में प्रकाशित

रोज शाम को कालेज स्कायर टहलने जाया करता हूँ। चाहे जितनी भी देर हो जाये, ड्यूटी में चूक नहीं होती। तालाब के चारों ओर ८-१० चक्कर लगाता हूँ—तेजी से। और फिर, पास की बेंच पर बैठकर शरीर से सुस्ताता हूँ, मगर मन को, कल्पनाओं की तरंगों में बेरहमी से बहा देता हूँ। उसके डूबने का डर नहीं रहता। डूबता है, तभी कुछ-न-कुछ ले आता है।

हाँ, तो आज भी चक्कर काटने पहुँचा। आधे ही चक्कर में मिल गये श्री शिवशंकर शर्मा। बस, मैं पूरे चक्कर में पड़ गया।

बात यह है कि जब से इस-सिनेमा-लाइन में आया हूँ, सिफारिश चाहनेवाले उम्मीदवारों को टालते-टालते, तंग आ गया हूँ।

बाहरवालों की चिट्ठियों का ऐसा जवाब देता हूँ कि किसी की हिम्मत दुबारा लिखने की नहीं होती। यहाँवाले घर पर ही आकर दिमाग चाटने लगते हैं। जब बहुत हैरान हो गया, तो कमरे में यह लिखकर टाँग दिया—

"कोई महाशय सिनेमा में नौकरी दिलाने के बारे में बात न करें।"

फिर भी कोई जब बहुत ही पीछा करता, तो डायरेक्टर से मिला देता। अगर सिप्पा भिड़ गया तो उनका भाग्य, नहीं तो मेरा पिंड छूट जाता।

शिवशंकर जी भी 'बहुत पीछा करनेवालों' में से ही थे।

उन्हें मालूम था—मैं शाम को कहाँ आया करता हूँ। बस, आज यहीं भिड़ गये।

मैंने भी सोचा, आज इन्हें खूब ही निराश कर दूँ। बस, चक्कर काटना बन्द कर दोनों एक बेंच पर बैठ गये। और मैं लगा उन्हें उलटा-गीता पाठ पाठ पढ़ाने। जिस 'महाभारत' में वे कूदना चाहते थे, मैं उन्हें तरह-तरह के "उपदेश" देकर अलग ही रहने को समझाने लगा! मगर वह काहे को सुनते! 'अर्जुन' की तरह सवाल-पर-सवाल करके मेरा नाक में दम करने लगे।

इसी बीच एक १२-१३ सालका ढीठ लड़का, साथ में ६-७ साल के छोकड़े को लिये, पास आकर बोला—

'बाबू मालिश'! मैंने कहा 'नहीं'। दोनों चले गये, और मैं अपने 'पारथ' को समझाने लगा। थोड़ी देर बाद फिर छोकड़े आ डटे। 'बाबू मालिश कराइयेगा ?'

गीता—रचना में डिस्टर्ब होते देख, मैंने जरा डाँटकर कहा—'नहीं रे नहीं, ज़बरदस्ती मालिश करेगा क्या ?'

छोटा बोला—'नहीं बाबू, हमलोग खूब बढ़िया मालिश करते हैं।' मेरे मित्र ने तनिक क्रोध से कहा—'जाओगे नहीं यहाँ से ?' दोनों फिर निराश होकर लौट गये। मैं जल्दी-जल्दी अध्याय पूरा करने लगा।

बहुत से उदाहरण देकर समझाया कि नए आदमियों को इस लाइन में घुसने के लिए कितनी कठिनाइयों का सामना

करना पड़ता है। एक तो कलकत्ता में हिन्दी-फिल्म-व्यापार यों ही ठंडा है। जो कुछ है भी, उसमें से भी, बराबर छँटाई होती रहती है। तिस पर पक्षपात! फिर नए आदमियों की गुंजायश किस तरह हो? और—

मेरे 'सखा' बीच ही में बात काटकर कुछ कहना ही चाहते थे कि ये दोनों 'विघ्न' इधर-उधर चक्कर काटकर फिर आ धमके। न जानें वे दोनों मुझे पहचानते थे, या उन्हें सचमुच कुछ आमदनी न हुई थी। इस बार बड़ा छोकड़ा मुस्कुराता हुआ बोला—

'बड़े बाबू, सच कहता हूँ—ऐसी मालिश कर दूँ, कि आपकी तबीयत खुश हो जाय। ज़ियादा नहीं, सिर्फ एक आने की ही तो बात है। अगर पाँच मिनट में आपको नींद न आ जाय, तो एक कौड़ी मत दीजिएगा।'

जी में तो आया, एक-एक चाँटा रसीद कर दूँ, मगर कुछ सोचकर गुस्सा पी गया। शिवशंकर झपटे उनकी तरफ़। मैंने रोक लिया। दोनों छोकड़े मुस्कुरा रहे थे। छोटा फिर बोला 'हुज़ूर, मालिश।'

बड़ा शरारती लहजे में कह उठा—'बाबू मालिश'

मैंने सोचा, बच्चे हैं तो क्या, इन्हें इन्हीं की तरह सज़ा देनी चाहिए। तब मैंने उनसे कहा—'कितने पैसे लोगे'? बड़ा छोकड़ा बोला 'सिर्फ एक आना हुजूर।'

मैंने कहा 'जिसे कहूँ, उसकी मालिश करोगे?' दोनों बोल उठे—

'हाँ, सरकार ।'

मैंने दो पैसे पाकेट से निकालकर बड़े को पेशगी देते हुए कहा—'अपने साथी की मालिश करो' इतना सुनते ही दोनों अकचकाए। तब मैंने पैसेवाला हाथ खींच लिया और कहा—'मुझे मालिश की जरूरत नहीं है, अगर तुम्हें पैसे चाहिये तो जिसे मैं कहूँ, उसकी मालिश करो, नहीं तो जाओ। और फिर दुबारा आकर दिक्क करोगे तो, इस बार पिटोगे।'

अब तो दोनों आपस में एक-दूसरे का लगे मुँह ताकने और हम मुस्कुराने।

बड़े ने देखा कि आया हुआ पैसा जा रहा है, तब वह छोटे को समझाने लगा। छोटे बेचारे की तो बोलती बन्द।

बहुत 'ना' 'नू' के बाद वह नीमराजी हुआ। तब बड़े ने उस पर हाथ फेरना शुरू कर दिया। एक-दो मिनट में ही छोटा घिघिया उठा।—आखिर में रो पड़ा। बड़ा उसे समझाने की कोशिश करने लगा। आसपास के बहुत से लोग तमाशा देखने इकट्ठे हो गये और असलियत जानकर हँसने लगे। जब मैंने देखा कि काफी सजा हो गई तो मालिश रुकवा कर उनके पैसे दे दिये।

कहानी

भोली भक्ति

वैसे तो यह है बच्चों की कहानी, पर शंकर पार्वती संवाद का रहस्य-प्रकाश युवक-बूढ़ों को भी तत्वज्ञान के साथ मनोरंजन देता है। 'जागरण' काशी, और 'समाज-सेवक', कलकत्ता में प्रकाशित।

"डेको लगुनात, अमलागल कैंडा बलिया उआअय"

"आउल मेलाबी"

"मेलावी"

रघुनाथ—"हाँ हाँ, छवका बरिया हुआ हय।"

"एँ एँ एँ, मेला तोल दिया।"

रघुनाथ—"नहीं, तोरे उछको कछग"

"एँ एँ एँ, अमला गल गिला दिया, ऊँ···ऊँ···ऊँ"

रघुनाथ—"देखो कमल, तुमने उमा का घर गिरा दिया। कान पकरो···।"

* * * *

शरद का शीतल प्रभात था। गुलाबी जाड़े की लोरियाँ अभी भी मादकता फैला रही थीं। बाल—रवि ने प्रकृति के हरियाले बासनों में परोसे हुए आकाशी-मोतियों का नाश्ता करके, रेतकी भींगी चादर में, अभी अभी मुँह पोंछना आरम्भ किया है। मोदपुर गाँव में गल-बहियाँ डाले बहती हुई गन्डकी के एक कम चालू घाट पर थोड़े से स्नानार्थियों का शान्त कोलाहल जारी है। ५–७ छोटे-छोटे बाल-बालिकाओं की टोली, गीली रेतीमें पैरोंके सहारे घर बनाने का खेल खेल रही है। सभी की उम्र ४ से ७ की होगी। सभी नंगे हैं। किसी-किसी के शरीर पर जाँघिया और कुरता है। एक रघुनाथ ही सबमें बड़ा और कुछ समझ-

द्वार है। कमल ने जब उमा का घर ढाह दिया, तब उसने उसे कैसा दण्ड दिया, यह आपको मालूम है।

❀ ❀ ❀ ❀

थोड़ी देर में, स्नानार्थी निवृत्त होकर, घाट के जागते देवता 'चुनेश्वर महादेव' के दरबार में हाजिर हो चुके हैं। बालू की पालिश से चमकते हुए लोटों में गंडकी का जल भरे, भूतनाथ भगवान पर चढ़ाते, 'बम्-बम् महादेव' के नारे लगाते हुए भक्त लोग धीरे-धीरे घर लौटने लगे। उधर बाल-मण्डली में कनैठी लीला ने सारा गुड़-गोबर कर दिया। सबके घर बिगड़ गये। घाट को सूना देख, अन्त में इन लोगों ने भी जल्दी-जल्दी नहाना और जलक्रीड़ा में घर बिगड़नेवाले गम को डुबाना शुरू कर दिया। खूब ऊधम मचा लेने के बाद, चलते समय प्रस्ताव होने लगा।

रघुनाथ ने कहा—"हम भी महादेवजी को जल चढ़ावेंगे।"

कमल—"अमबी चरावेंगे।"

उमा—"अमबी"

गायत्री—"ईयाँ छे ले कैसे जाओगे?"

रघुनाथ—(कुछ सोचकर) "ईंजुली में"

बस क्या था, सबों ने अँजुलियाँ भरनी शुरू कीं और भर-भर कर जैसे ही कुछ बढ़े कि वे मुफलिस हो चलीं। मन्दिर तक जल ले जाना मुश्किल हो गया। फिर परामर्श होने लगा।

गायत्री ने कहा—"आज छोड़ दो, कल लोटा लायेंगे" मगर

बहुमत की जोरदार इच्छा हुई कि नहीं आज जरूर चढ़ाया जाय —चाहे जैसे भी हो।

विमल की सलाह हुई कि पत्तल का दोना बनाकर काम लिया जाय। पर व्यवहार में यह भी बेकार साबित हुआ। अन्त में बहुत तर्क-वितर्क के बाद यह निश्चय हुआ कि—"खूब कुल्ला करके-भीतर से मुँह खूब साफ करके, एक-एक पवित्र कुल्ला जल लेकर चला जाय और 'बाबा' पर चढ़ाया जाय।"

मन्दिर में सन्नाटा हो चला था। पुजारी महाराज रसोई-खाने में जा लगे थे। इसी समय भोले-भाले शम्भू के भोले-भाले भक्तों की अपूर्व जल-ढरी आरम्भ हो गई!

❀ ❀ ❀ ❀

पार्वती तमक उठीं। मुँह लटका लिया। उठकर जाने लगीं। बनावटी आश्चर्य से बाँहें पकड़ कर नटराज ने पूछा—"कहाँ चलीं।"

पार्वती—"बस छोड़ दीजिये, हटिये।"

भगवान—"आखिर हुआ क्या? कुछ कहो भी तो।"

पार्वती—"आप औघड़ हैं-पूरे अघोरी।"

शिव—"अरे यह तो सभी जानते हैं, कोई नयी बात नहीं है।"

पार्वती—"हाँ नयी, एकदम नयी बात है और साथ ही घृणित भी (मुँह बिचका कर) ओह, राम-राम।"

शंकर—(मुस्कराकर) साफ़ तो कहती नहीं, बेकार घृणा प्रकट कर रही हो।"

पार्वती—"आप तो जान-बूझकर, अनजान बने, विनोद कर रहे हैं। अभी-अभी आप पर कैसा पवित्र और सुस्वादु जल चढ़ाया गया है।"

महेश—(बैठाते हुए) "बस, इतनी सी बात! मालूम होता है, उस अप्राप्य देव-दुर्लभ-तरल राशि को अकेले ही डकार गया, इसी से तुम अप्रसन्न हो। अच्छा, कल रहा सब-का-सब तुम्हारे ही हिस्से में।"

पार्वती—(फिर उठने की चेष्टा करती हुई) "देखिये मुझे मतली आने लगेगी। राम राम! गन्दे बालकों के अपवित्र मुँह का दुर्गन्धयुक्त जल! छिः छिः!"

विश्वनाथ—"सच कहता हूँ देवि, जीवन में ऐसी भेंट कभी मयस्सर न हुई थी। गंगा से भी अधिक पवित्रता, अमृत से भी अधिक स्वाद, सोम रस से भी अधिक मादकता और मधु से भी बढ़-चढ़कर मिठास! ओहो हो, अभी तक जीभ चटपटा रही है।"

पार्वती—(चिढ़कर) "जाइये, इस बारे में आपसे कुछ कहूँगी ही नहीं। किन्तु कृपया अब से मेरे पात्रों को जूठा...।"

महादेव—"भूधर-भूपति की मानिनी कन्या, तुम व्यर्थ ही मान कर रही हो। आश्चर्य है कि तुमने उन भोले शिशुओं का भाव नहीं परखा।"

पार्वती—"क्षमा कीजिये, जब धर्म और आचार पर घृणित आघात हो, तो केवल कोरा 'भाव' देखकर क्या होगा ? राम राम ! कहाँ वह स्नान से पवित्र, विशुद्ध वस्त्र पहिने भक्तों के धोये-माँजे पात्रों का पवित्र जल और कहाँ मुँह के थूक-खखार और लार का मिश्रित—एकदम अशुद्ध पानी ?"

शम्भू—'मालूम होता है तत्वहीन-रूढ़ीवादी-धार्मिक संस्कार का सनीचर तुम्हारे सर भी चढ़ बैठा है। अच्छा बताओ संसार हमारी उपासना किस प्रकार करता है ?'

पार्वती—"आपकी मूर्ति का ध्यान या पूजा करके"

बमभोला—(हँसकर) "मेरी मूर्ति ? कहाँ है ?"

पार्वती—"वही जो शिवालयों में प्रतिष्ठित हैं।"

महेश—(जोरसे हँसकर) "आज तुम्हें क्या हो गया है प्रिये ? क्या वही मेरी मूर्ति है—प्रतिमा है ?"

पार्वती—"संसार तो यही समझ कर पूजता है।"

कैलाशपति—"किन्तु, तुम भी कह सकती हो कि वह मेरी ही मूर्ति है ? उसके न हाथ-पैर हैं, न मुँह है और न अंग-अवयव ही हैं, केवल एक गोल और लम्बा शिला-खण्ड मात्र है। उसमें और मुझ में समानता कैसी ?"

पार्वती—मूर्त्ति न हो, समानता भी न हो, किन्तु संसार तो उसीको आपका सूक्ष्म-मानचित्र मानकर उपासना करता है।"

अखिलेश—अब आयीं राह पर। उसी सूक्ष्म मानचित्र में

'भाव' का रहस्य छिपा हुआ है। मेरी यथार्थ मूर्ति कल्पना के परे है, क्योंकि न तो उसे किसी ने देखा है और न देख ही सकता है। इसलिये लोग अपनी भावना-कल्पना के अनुसार मेरी अलख-अगोचर मूर्ति को एक केन्द्र-बिन्दु में अवस्थित मानकर मेरी उपासना करते हैं। जिस तरह गंगा की पवित्रता उसकी एक बून्द में परखी जा सकती है, सूर्य की महत्ता एक छोटे छिद्र द्वारा आयी हुई उसकी रश्मियों से मापी जा सकती है, उसी प्रकार शिवालयों में प्रतिष्ठित पत्थर के उन छोटे शिला-खण्डों से सारे विश्वब्रह्माण्ड के इस अविनाशी अधिपति का अन्दाजा लगाया जा सकता है। फिर जब सारा जगत भाव की पूजा करता है, तब मैं पूजापति होकर सच्चे भाव की गंगा में पवित्र की हुई वस्तु की श्रेष्ठता क्यों न अनुभव करूँ?"

पार्वती—(कुछ ठहर कर)—"आप से तर्क में कौन जीत सकता है? परन्तु उन अबोध और मध्यम-संस्कारी शिशुओं के भाव का क्या ठिकाना कौतूहल वश बड़ों की देखा-देखी किये गये कार्यों में भाव की सूक्ष्मता की कसौटी क्या?"

हर—"हाँ, इसका निर्णय परीक्षा द्वारा किया जा सकता है। अच्छा कल प्रातःकाल उसी समय तैयार रहना।"

× × × ×

दूसरे दिन भक्त-मण्डली ठीक समय पर स्नान-आदि से निवृत्त हो बाबा के मन्दिर में इकट्ठी होकर भजन-पूजन में तल्लीन है। एकाएक बड़े

जोरों से मन्दिर गर्ज उठा। मालूम हुआ। अभी ढह पड़ेगा, मानो वज्र गिरा हो।

भक्तों की सारी भक्ति बिखर गई। सबके सब भाग खड़े हुए! किसी ने लोटा छोड़ा, किसी ने थाली। किसीने निर्माल्य छितरा दिया। पुजारी महाराज भी कहीं जा दुबके।

विश्वेश्वर ने पार्वती से कहा—"देखा, अपने विशुद्ध-ब्राह्मण पवित्र भक्तों की अपूर्व भक्ति ? अगर मैं और जोर से गर्जता तो सबके सब यहीं मरते थे।" पार्वती ने कहा—"अच्छा; अब आपके प्यारों की भक्ति देखूँगी!"

बालकों की जल-क्रीड़ा अन्तिम साँस तोड़ चुकी थी। अब जलढरी की तैयारी थी। छोटे-छोटे कोमल मुख-पात्रों में जल भरकर भोले-भाले भक्त, अपने इष्ट-देव के दरबार में इकट्ठे हुए ही कि मन्दिर में पहिले से भी दूना गर्जन हो उठा। रघुनाथ ने घबरा कर कहा—"मन्दिर गिर रहा है, हमारे शिवजी पिचा जायेंगे।" बस क्या था, सबके साथ शिवलिंग पर इस तरह छा गये, जैसे मन्दिर को अपने ऊपर रोककर, भगवान को बचा रहे हों।

❀ ❀ ❀ ❀

नटनागर मुस्करा रहे थे और पार्वती की आँखों में वही गंडकी का जल चमक रहा था!

---:❀:---

कहानी

नापाकिस्तान

'संसार' के होली-विशेषांक (१९४५) में जब यह रचना प्रकाशित हुई, लेखक के पास कई प्रशंसात्मक पत्र आए। बम्बई के एक गुजराती साप्ताहिक, दिल्ली के उर्दू ········सिने साप्ताहिक और मुज़फ्फरपुर के 'तिरहुत समाचार' ने भी इसे प्रकाशित किया। इसमें जो कुछ है, दिल-ओ-दिमाग़ के लिये बहुत कुछ है। इस संग्रह का अंतिम अंश असामयिकता के कारण हटा दिया गया है।

जो आँखों देखा, कानों सुना, मगर समझ नहीं सका। वही लिखने चला हूँ। झूठ-सच की तो भगवान जानें, लेकिन इतना दावे से कह सकता हूँ कि मेरी नीयत साफ है।

न जाने दोस्तों को क्या दुश्मनी है कि जब कभी घोट-घोट होती है, गहरी—एक दम गहरी—छना देते हैं। शायद इस लिए कि मैं अपने होशो-हवास को उनकी बेहोशियों पर हिरन कर दूँ। यानी पर को कतर कर अथवा बे पर की उड़ाकर उनका, जिस तरह हो, मनोरंजन करूँ।

उस दिन भी बागीचे में घुटी और खूब ही घुटी। यही ५-७ आपस ही के गिने-चुने हमजोलियों का प्रायवेट जमाघड़ा था। यारों ने कहा—'आज तुम्हारे ही हाथों की करामात देखेंगे।' सो, कुछ न पूछिए। बकौल खुद 'पत्ती थी कड़ी और गजब हाथ थे उनके, 'जालिम ने चकाचक को हलाहल बना दिया।' वाली कहावत चरितार्थ हुई। पुरानी जहरी पत्ती, गंडकी का निर्मल जल, साफ-छिले हुए बादाम-पिस्ते, चुनी हुई ठंढई, केशर, ताजा-ताजा गइया का दूध। ओह, दिव्य सोमरस! सिल-लोढ़े ने भी जैसे अपने कलेजे खोल दिये। तिसपर सधे हुए हस्त-कौशल के ताण्डव-नृत्य का क्या कहना!

हाँ तो जनाब, दो-दो दोस्तों ने लिये और मेरे सर पड़े ४ चुक्कड़। तिसपर जालिमों ने मेहनताने में अपनी तरफ से २ की चपत और जड़ दी। पापी पेट फटा तो नहीं, लेकिन इनाम

वग़ैरह से छुट्टी पाते ही जादू सर चढ़ बैठा। विशुद्ध नशा के बदले दिमाग़ में चक्कर आने लगे। तबीयत बदमज़ा हो गई। रंग बदरंग हो चला। मित्रों की मजलिस की मजेदारी मारी गई। निश्चित कार्यक्रम रद्द हो गया। पेड़ के नीचे खाट पर जा लेटा। क्षण में ही सरूर का गरूर सातवें आसमान कुछ ऐसा चढ़ा कि मैं अपकड़-कल्पनाओं की घुड़दौड़ में बेतहाशा बाज़ियाँ लगाने लगा।

एक अनोखी योजना सूझ गई। सोचा इन दिनों हर तरफ 'इस्तनानों' की धूम है। कोई 'पाकिस्तान', कोई 'हिन्दू-इस्तान', कोई 'पाठानिस्तान', कोई 'द्राविड़िस्तान' कोई 'आर्यिस्तान', तो कोई 'अमुकिस्तान' बना रहा है। ध्यान में आया यह सभी एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं—एक ही 'इस्तान' के पर्यायवाची। निर्बलों पर सदैव के लिए अधिकार रखने की, बलवानों की साज़िश है। संसार में सारे अनर्थ की जड़ यही है। इसे दूर किए बग़ैर सच्ची शान्ति नहीं स्थापित की जा सकती। तरंग में तड़ित वेग से चट उपाय भी सूझ गया।

संसार में जितने दुखी, असहाय, पीड़ित और कमज़ोर जीव हैं—चाहे वे दो पाये हों या चौपाये—सबों का संगठन करने के लिए, एक अलग 'इस्तान' 'नापाकिस्तान' के नाम से कायम हो जो बलवानों के 'पाकिस्तान' से एकदम दूर रहे।

सोचते देर न लगी कि दुर्लभ सोमरस की कृपा से क्षण भर में ही वह विराट् बस्ती बस गई और मैं वहाँ का राष्ट्रपति चुन

लिया गया। मेरे स्वागत की ऐसी अभूतपूर्व तैयारियाँ हुईं कि दुश्मनों के दिल पर साँप लोटने लगा। वे बाधा डालने की गुप्त कोशिश करने लगे। नियत समय पर जैसे ही मैं प्रवेश-द्वार पर पहुँचा कि फाटक की दोनों तरफ़ से पम्पों द्वारा खौलता हुआ तैल मेरे पैरों पर डाला जाने लगा। पाँव जल उठे। फिर आँखों का जो पट खुला तो अपना सारा मायाजाल समेट कर कलमुँही कल्पना भाग खड़ी हुई। होश सँभाल कर देखा कि दोनों तरफ़ से चतुर्वर्षीय भौंचन्द और पंचवर्षीय मिरजा, पेंट खोलकर अपनी प्राकृतिक पिचकारियों की गर्मागर्म बौछार मेरे दोनों पैरों पर चला रहे हैं। जी में आया इस गुस्ताखी पर चट चट एक एक चाँटे रसीद कर दूँ। मगर दुष्टों ने मौका ही नहीं दिया। एक बोला—'ऐसा अन्टाग़फील सोते हैं आप? पचती नहीं तो इतना चढ़ा क्यों लेते हैं?' दूसरे ने मेरी बोलती के कान उमेठे—"उफ़ कितनी देर से जगाते-जगाते, इस नायाब उपाय से आपकी नींद खोल सके हैं हम। ख़ैर! चलिए, चलिए। देर न कीजिए; समय निकला जा रहा है।"

मैंने गुस्सा पीते हुए कहा—'कहाँ चलने को कहता है रे पाजियो।' भौंचन्द मुँह बनाता हुआ बोल उठा—'जिन्दगी भर सुफ़ीयागीरी कीजिएगा, मगर ऐसा अवसर कभी न मिलेगा।' न जाने क्रोध के बदले क्यों उनकी बातों पर विश्वास होने लगा।

हमलोग बाहर आए। दरवाजे पर देखा, दो गदहा-बछेड़ों

के साथ एक लगड़ा गधा कनौतिया चढ़ाये खड़ा है। मुझे उसपर बैठाकर मेरे दोनों तालबैताल दोनों बछेड़ों पर जा बैठे। मिरजा ने कहा—'जोर से दोनों कान पकड़े रहिएगा......हाँ, हाँ, हाँ, अरे अपने नहीं, गधे के कान पकड़िए।' और सचमुच लम्ब-कर्णजी के कान पकड़ते ही, ऐसा मालूम हुआ—मानों मैंने कोई कल दबा दी। ओह, तीनों सवारी हवा में उड़ चली। ख्याल आया, ऐसा तेज चलनेवाला विमान अब तक नहीं बना होगा। क्योंकि कसम सिल-लोढ़े की, बात की बात में, हमलोग नियत स्थान पर जा लगे।

अब मेरी निगाह और मेरे कान, जैसे ही उस दृश्य और आकाशभेदी कोलाहल पर अटके, तो क्या पूछते हैं आप, कि बस, मत पूछिए! दद्दा रे दद्दा, मेरी तो सिट्टी-पिट्टी गुम! उफ्फोफ, ऐसा न देखा, न सुना।

एक बहुत बड़े मीलों लम्बे-चौड़े मैदान में, हजारों गधे-गधियों का विराट-महासम्मेलन जुटा हुआ है। हेंको-हेंको, हौंच और खुर-खर, और सट-पट की आवाजों से वायुमंडल में एक विचित्र निनाद फैला हुआ है।

बीच में रास्ता बना हुआ था। उसके दोनों ओर युवक-युवती गधे-गधियाँ कतार में—एक साथ कान ऊपर उठाए हुए—खड़े थे। हमलोग छहों जीव, शान से बीच में पहुँचे। वहाँ काफी जगह छुटी हुई थी, जिसमें ताजे-ताजे धाए-सुखाए बिना

इस्तरी किए हुए रेशमी और रंगीन कपड़ों के छोटे-छोटे ढेरों पर आठ-दस रोबीले गधे, कुछ अलबेले ढंग अकड़े बैठे हैं। मौचन्द से मालूम हुआ कि ये गधों के नेता हैं— लम्बकर्णजी, घेंटाराम, हुंकारानी, लम्बलिंगजी, मटट्टू, ठिठरा वगैरह।

मिरज़ा ने कहा—'अब कार्यवाही आरम्भ होगी। आप अपनी सवारीवाले गधे की दुम थामे रहिए, सारी बातें समझ में आ जायेंगी। और सबसे पहले स्वागत-कविता आपको ही पढ़नी चाहिये। कहना नहीं होगा कि मैंने ऐसा ही किया। निम्नलिखित स्वागत-कविता पढ़ी—

'गदहे राम बहुत मजबूत,
धोबी के मेहनती सपूत।
लादी लादी जाती इन पर,
ऊपर मालिक बैठे तनकर॥
भारी बोझ लादकर चलते,
कभी नहीं हैं तनिक मचलते।
तौभी मार बहुत खाते हैं,
डंडा खा-खा दुःख पाते हैं॥
सब कुछ धीरज से सहते हैं,
मनकी मन में ही कहते हैं।

बाहर से चर-चुर कर आते,
टाँगों में फंदा लगवाते ॥
बस बोली है बहुत करारी,
चिल्लाहट है इनकी भारी।
हरदम हेंको हेंको कहते,
रोते हैं या हँसते रहते'

इस पर जो कुहराम मचा है कि बाप रे बाप, कान के पर्दे फँटने लगे। मैंने दोनों कानों में उँगली डाल ली। कह नहीं सकता कि युद्ध में हजारों बमों के फटने से भी ऐसा वज्रपात होता होगा या नहीं। शीघ्र ही लँगड़ी धोबिन का तगड़ा गधा ढिढ़मदरा उठा और अपनी रेंक-बोल में न जाने क्या ललकार उठा कि कोलाहल शान्त हुआ। पता चला, आप स्वागत-मंत्री है।

इसके बाद, बंठारामजी स्वागत-भाषण को उठे।

'हमलोग जगदम्बा के बाहन हैं। महाप्रतापी राज-राजेश्वर लंकेश महाराज श्री रावण जी के दसों सर में—सबसे ऊपरवाला सर हमारा ही था। एक बार नारदजी को भी हमारा मुख धारण करना पड़ा था। हमारा महत्त्व बहुत बड़ा है। हम वस्त्र-विशुद्ध-वाहन हैं। कहीं हमसे खेती कराई जाती है, कहीं सवारी ली जाती है, कहीं बोझे ढोआये जाते हैं। और हमारा दावा है कि बोझे ढोने में हमारी बराबरी कोई जीव नहीं कर सकता। (इस पर तमाम गधे कान फटफटा उठे) हमारी और घोड़े की

नस्ल असल में एक ही है, मगर स्वार्थी मानव-सभ्यता ने दो कर दी। और फिर दोनों के संयोग से खच्चर पैदा कराकर, मानव रूपी पशु हमसे अन्य काम लेते हैं। हमारी गधी का दूध मुर्दों में भी जान डालने की शक्ति रखता है। हमारा विराट् कोक-शास्त्र संसार में अपना सानी नहीं रखता' इस पर जो कर्णफोड़ करतल शुरू हुआ कि मालूम पड़ा आज आसमान की कुशल नहीं। कोई गधियाँ इधर से उधर भागने लगीं, जिनके पीछे कई लफंगे युवक गधे अपने विराट-फौज में दिखाई दिये। 'बेटा' ने दुलत्तियों के शिष्टाचार से उनके होश ठिकाने किये तब शान्ति हुई। स्वागताध्यक्ष ने फिर कहा कि 'हम ऐसे उपयोगी जीव हैं कि हमारी लीद तक लोग बेकार नहीं जाने देते।' अन्त में आपने सबों का स्वागत किया, त्रुटियों के लिए क्षमा माँगी और सभा-नेत्री से आसन ग्रहण करने की प्रार्थना की।

तदन्तर तुमुल ढेंचो घोष और कर्ण फटफटाहट के बीच श्रीमती ढेंचों रानी ने खद्दर के श्वेत—सुसज्जित गद्दर पर आसन जमाकर, अपना भाषण आरंभ किया।

"आज संसार में भीषण क्रान्ति की लहर फैली हुई है। हर देश में, हर वर्ग में, हर जीव में परिवर्तन के भाव जाग उठे हैं। सदियों के सताए और दबाए हुए, आज अपने उत्थान का अनुकूल अवसर समझ कर बोल रहे हैं। परन्तु अत्यन्त खेद की बात है कि हम अभी तक नीचे ही गिरे हुए हैं—हम पर अनेक

अत्याचार हो रहे हैं। हमारी सहनशीलता ही हमारी गुलामी की बेड़ी बन गई है। हमारा बोझा उठाने का गुण, हमें और भी बोझ ढोने को मजबूर कर रहा है। अपने अमोघ अस्त्र 'दुलत्ती' को हम आज आपस में ही प्रयोग कर रहे हैं। 'दाँत काटी' शस्त्र को आज हम एक दूसरे के विरुद्ध काम में ला रहे हैं। लाखों करोड़ों मनुष्य-रूपी-गधों के गन्दे वस्त्रों का भारी-से-भारी बोझ हमी लादते हैं। हमारे मालिक को इतने से ही संतोष नहीं होता। नवाब का नाती बनकर बोझ-पर-बोझ होकर, वह भी लद बैठता है। खाने को पूरा नहीं देता। इधर-उधर चरने को भी छोड़ देता है तो अगले पैरों में फन्दा डाल देता है। हमारी गधी को बच्चा हुआ तो बेरहम को क्या, एक दिन भी सौरिगृह में दम नहीं लेने देता। दूसरे ही दिन काम में लगा देता है। हम पर मुँगरी की भीषण मार पड़ती है। इसलिए भाइयों और भौजाइयो! हमारी जोरदार राय है कि हमलोग संगठित होकर अपनी बस्ती अलग बसावें। अपने को पवित्र कहने वाले मानव की नगरी से हम अपवित्रों की नगरी दूर—एक दम दूर रखें। हाँ, कोई दूसरा किसी तरह का भी जीव जो हमारी ही तरह दलित-दुखी हो, मेल से रहना चाहे तो खुशी से हमारे 'नापाकिस्तान' में रह सकता है। और हम यह भी कह देना चाहते हैं कि अब हम अपने अस्त्र-शस्त्रों को अपनी रक्षा के लिए ही सुरक्षित रखें।

अन्त में, मैं मनुष्यों को चेतावनी देती हूँ कि वे आपस में गधा कहने की आदत से बाज आवें। इससे हमारे समाज का अपमान होता है।"

गर्दभ-नेताओं के आशीर्वचनों के बाद, सभी गधे-गधियों ने दुम उठाकर और कान खड़े कर सभापति के प्रस्तावों को स्वीकार किया।

—:❀:—

कहानी

चतुर-चतुरानन

चाचाजी खुद अपना परिचय हैं। वे १९४० में कलकत्ता आए और रहे—बहुत कुछ देखा सुना। उनकी बहुत थोड़ी सी अनोखी बातें इस कहानी में दी जा रही है। शेष के लिये उनसे 'सेंसर' कराना है। वे इस समय कहां हैं—किस धुन में है, पता नहीं। राजकुमार दरभान भी कहीं गायब है। इसलिये पाठकगण चतुराननजी के सम्बन्ध में इतनी ही भेंट स्वीकार कर, संतोष करें। साप्ताहिक 'विश्वमित्र' में इसके अनेक अंश प्रकाशित हो चुके है।

सर सफाचट, बाँयीं आँख जरा ऊपर उठी हुई और दाहिनी नीचे झुकी हुई—मानो आकाश-पाताल दोनों की खबर रखनेवाली। चपटी नाक,—चेहरे पर पेबन्द की तरह चिपकी हुई। बङ्गसागर और हिन्दमहासागर की तरह दोनों चिमटे गाल और नीचे लटकी हुई ठुड्ढी ने कुमारी अन्तरीप का नक्शा लालाजी के चेहरे में नुमायाँ कर रखा है। माँ को मरे इतने दिन हो गये कि इन्हें याद भी नहीं, लेकिन 'माता' के प्यार की सहस्त्रों अमिट छाप सुघड़ सूरत पर छविमान हैं। साथ ही दर्जनों टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें मानचित्र की नदी-रेखाओं की तरह अतीत की याद दिला रही हैं। ऊँटनुमा लम्बी गर्दन, एक ओर का कंधा तनिक-सा झुका हुआ। बदन में मटमैले रंग की मोटी खादी की चौबन्दी, जिस पर जगह-व-जगह मैल की तह जमी हुई, कमर में काले रंग की जाँघिया, पैर में कानपुरी चमरोंधा,—बायाँ पैर बड़ा, दायाँ छोटा। चलते समय कमर कुज खाली हुई। पीठ पर बड़ी-सी गठरी, जिसके दोनों छोर कंधों के नीचे से निकलकर गर्दनपर गठबन्धन किये हुए। दायें कंधे से लटकता हुआ बटुआनुमा-झोला। बायें हाथ में छोटी-सी झोली। दाहिने हाथ में भंगघोटना। बस, यह हुलिया है हमारे चाचाजी की।

जिस समय आप पटना जङ्क्शन के बाहरी अहाते में, धरातल पर विषम समकोण बनाते हुए, धड़ल्ले से आ धमके, उस समय आधी रात आखरी साँस तोड़ चुकी थी। चाचाजी ने सोचा

कि, टिकट लेना तो महापाप है और किसी-न-किसी तरह कलकत्ता पहुँचना महापुण्य। इसलिये थर्ड क्लास के गेट की आशा छोड़, ऊँचे क्लास के गेट के पास चहलकदमी करने लगे। अधगोरा गेटकीपर अपनी यूनिफार्म में तिपाई पर सजग बैठा था। मगर उससे भी सजग निद्रादेवी अपनी झपकी डालकर बेचारे को बीच-बीच में हिला-डुला देती थीं। चाचाजी इसी मौके की ताक में थे। आहिस्ते से उसके पीछे खड़े हो गये। इस बार जैसे ही झपकी ने अपना वार किया कि चतुरानन चाचा झट से भीतर हो रहे और फुर्ती से प्लेटफार्म पर पसर गये उसी तरह कील काँटे से सजे-धजे। ऊँघाये हुए कान्स्टेबल ने टोका—'अभी पंजाब मेल आयेगी; पसेंजर गाड़ी लेट है। उधर जाकर बैठो।' लालाजी ने रूपक बाँधते हुए कहा—"तुम्हारे कहने से उधर जायें? पंजाब मेल में ही तो जाना है।

कान्स्टेबल—'टिकट किस क्लास का है?'

चाचाजी—'जिस क्लास का होगा, आप ही चढ़ जाऊँगा। तुम्हारी मदद नहीं चाहिये।'

इतने ही में मेल धड़-धड़ाती हुई आ लगी· खचाखच भरी हुई। उतरनेवाले कम, चढ़नेवाले अधिक। भारी रेलम-पेल मची। इण्टरक्लासी चाचाजी इण्टरक्लास के एक डब्बे की ओर लपके। वहाँ प्लेटफार्म पर पहले ही से एक मोटे थुल-थुल अधवयस सेठजी अपनी नयी सेठानी के साथ, असबाबों की किलेबन्दी

में डटे थे। दो नौकर, तीन कुली, एक दरबान यही सैनिक-टुकड़ी थी। सेठजी ने शायद पहले ही से चढ़ाई का उपाय कर रखा था। गाड़ी के प्लेटफ़ार्म छूते ही स्टेशन का एक कर्मचारी झट से उस डब्बे के पास आ धमका और उतरनेवालों के सिवा चढ़नेवालों को रोक कर दी। घबराये हुए मासूम मुसाफिर सेठ और कर्मचारी को आशीर्वाद देते हुए जिधर सींग समाए उधर घुसने की चेष्टा करने लगे। मैदान साफ़ देख कर सेठ और कर्मचारी की मुस्कुराहटें टकराईं, और फिर सामान डब्बे के भीतर रखने की तैयारी विद्युतगति से होने लगी। उससे भी तीव्रगति से ध्यान लगाए हुए हमारे हीरो चतुरानन चाचा लपक कर डब्बे के भीतर हो रहे और जब तक भीतरवाले मुसाफिर—'हाँ, हाँ अरे क्या करते हो, जगह नहीं है, दूसरे डब्बे में जाओ', पूरी तरह कहने भी न पाये कि चाचाजी अपना असबाब उतार इतमिनान से बैठकर मुसकाने और कुछ आँखों से देखने लगे। मोर्चेबन्दी भङ्ग होते देख कर सेठजी ने कर्मचारी की ओर देखा, कर्मचारी ने क्रुद्ध मुद्रा से जरा रोब के साथ चाचाजी से पूछा—'टिकट है ?'

चाचाजी—'है, बाबा है! तुम सेठजी का सामान तो भीतर चढ़ाओ, नहीं तो बेचारे की गाड़ी ही छूट जायगी।'

कर्म०—'हाँ सेठजी, सामान चढ़वाइये, जल्दी। (चाचा से) अच्छा, दिखाओ टिकट।'

चाचा—'तुम कौन होते जी टिकट देखनेवाले? बुलाओ टिकटचेकर को। अरे हाँ, देखिये तो सही।'

कर्म०—'तुम नहीं दिखाओगे टिकट?'

चाचा—'कह तो दिया कि टिकट चेकर को बुलाओ, तुम्हारा क्या विश्वास? टिकट दिखलाऊँ और तुम लेकर चलते बनो?'

कर्मचारी—'मालूम होता है—तुम्हारे पास टिकट नहीं है। उतरो नीचे।'—ऐसा कहकर उसने ज्यों ही चाचाजी का हाथ पकड़ नीचे उतारना चाहा कि चाचाजी ने कसकर एक भन्नाटा हाथ कर्मचारी को लगाया और लगे कुछ जोरों से रो रो कर आसमान सर पर चढ़ाने।—'बाप रे, बाप, मार डाला रे बाप, खून-खून,' अब तो बेचारे कर्मचारी की सिट्टी पिट्टी गुम। चाचाजी की चिल्लाहट उसी तरह जारी रही। ऊपर नीचे बेंचों पर सोये हुए मुसाफिर जग पड़े और चाचाजी से हमदर्दी दिखाते हुए कर्मचारी की लानतमलामत करने लगे। तब तक सेठजी असबाब के साथ लद चुके थे। गाड़ी की तीसरी सीटी भी बज चुकी थी। हक्का-बक्का कर्मचारी ज्यों ही उतरा, गाड़ी चल पड़ी। चाचाजी की रुलाई मुस्कराहट में बदल गई।

रातभर कोई विशेष बात न हुई। सिवा इसके कि चाचाजी के नासिका-यन्त्र की 'घर्र घर्र घों हप' की विचित्र आवाज से यात्रियों की नींद, बीच-बीच में करवट बदलती रही।

५ घण्टे तक बेखबर सोने के बाद चाचाजी खबरदार होकर

उठ बैठे ! देखा, अन्य यात्री अभी सो ही रहे हैं । अँधेरा अच्छी तरह दूर नहीं हुआ था । चाचाजी ने सोचा कि प्रातःकाल का अपना शुभदर्शन इन्हें देना ठीक नहीं, इसलिये सब की ओर पीठ फेर कर बैठ गये, और प्रभाती रेंकने लगे । गाड़ी के 'खटर खटर-खट्' के बेतालताल के साथ बिगड़ी हुई रेडियो-आवाज़ की तरह चाचाजी की कर्णभेदी सानुनासिक स्वरलहरी एक अजीब समाँ उपस्थित करने लगी । लोग हड़बड़ा कर उठ बैठे, और एक दूसरे को देखने लगे । असबाब और बेंच पर आधेआध सिमटी हुई नई-नवेली दुल्हिनजी घूँघट में सगबगाई । सेठजी भी 'राम-राम जै सीताराम' कहकर जँभाई लेते—चुटकी बजाते बेंच पर सीधे हो पड़े । मगर, हमारे सुगायक चाचाजी अलापे जा रहे थे—'मनुआ जागो भया सवेरा । माया का यह तेरा मेरा छोड़ो झूठा डेरा । कूच करन की बेरा । मनुआ जागो……' गाड़ी मधुपुर छोड़कर आसनसोल दौड़ी जा रही थी । कुछ को यहीं उतरना था । वे सामान वग़ैरह ठीक करने लगे । बाक़ियों ने टट्टी फराग़त से निबटने का विचार किया । मगर सभी हैरान थे कि यह कैसा गानेवाला है—जो मुँह फेर कर गा रहा है । यारों ने रुख पलटवाने के लिये बोल छोड़ना शुरू किया । 'वाहवा, क्या कहने हैं, कमाल है, क्या कहने हैं ।' मगर चाचाजी का साधनाक्रम ज्यों-का-त्यों रहा । एक बाराबंकी के मौलवी साहब जो कलकत्ता में किसी मुसलमान मिनिस्टर के लड़कों के उर्दू-ट्यूटर और कारिंदा

थे, घर से लौट रहे थे। ऊपरवाली बेंच से नीचे उतर आये और जरा मजाक़ के लहजे में बोले—"अजी हजरत ! इस बेजान लकड़ी की दीवार की तरफ तो आप अमृत टपका रहे हैं, और हम लोगों ने क्या खता की जो मुँह फेरे हुए हैं। जरा अपने रुखे-रौशन का पेंच इधर भी घुमाइये।" चाचाजी की संगीत-समाधि भंग हो चुकी थी, उन्होंने ज्योंही पट-परिवर्तन किया कि आश्चर्यजनक अस्फुट ध्वनि सब के मुँह से अनायास निकल गई। मौलवी साहब के मुँह से बेतहाशा निकल पड़ा—"सुभान अल्लाह, क्या क़यामत का हुस्न पाया है—तूने जालिम ! जिस वक्त अपनी कारीगरी का खजाना खोखला करके खुदा ने पहले-पहल तुझे गढ़ा होगा, क़सम जब्राईल की, फरिश्तों को ग़श आ गया होगा।" ठहाकों से डब्बा गूँज उठा। चाचाजी कब चूकनेवाले ? फौरन ही तौलकर जवाब दिया—"जी हाँ, और जिस समय आप खराद पर चढ़ाये जा रहे थे, खुदा के कारखाने में मनहूसियत मर्सिया पढ़ रही थी।" मौलवी साहब हाजिर-जवाबी की दाद देने से न चूके, फौरन ही उठकर बाइज्जत चाचाजी को अपने पास बेंच पर बैठा लिया और अपने व्यंग पर शर्माते हुए माफी माँगने लगे। चाचाजी ने कहा—"इसमें माफी क्या जरूरत ? भगवान ने मुझे बनाया ही ऐसा है कि जो देखता है—हँसता है। मुझे संतोष होता है कि कम से कम इस सूरत को देखकर लोगों का दिल तो बहल जाता है।"—इस बात पर मौलवी साहब और पानी-पानी

हो गये। औरों के मन में भी सहानुभूति जगी। तब तक आसनसोल आ गया था। उतरनेवाले उतर गये, तीन सूट-बूटधारी बंगाली सामान सहित चढ़े। चाचाजी को देखते ही एक ने कहा—'ओ माई गाड, बन्दर, बन्दर! दूसरा बोला—'हैन्स बैक आव नार्टडम।' तीसरे ने जरा नाक सिकोड़ कर कहा—'बट सेकेन्ड एडीशन'। चाचाजी ने उन्हें घूरते हुए—मुस्कुरा कर कहा—"एडीशन तो एक ही है, कापियाँ तीन हैं—क्यों मौलवी साहब?" उनमें से एक जरा तैश में बोला—'क्या कहा तुम?' चाचाजी ने नरमी से—मुस्कुराते हुए जवाब दिया—"मैंने कहा कि इस वेश-भूषा और जिस भाषा में आप तीनों ने अभी बातें कीं, उनसे आपका कोई संस्कारणीय सम्बन्ध है?" एक ने झुँझलाकर कहा "हम कुछ नहीं जानता, बास चुप करो।" इतने में सेठजी को पानी की जरूरत हुई। लगे चिल्लाने 'पानी पांड़, पानी पांड़' चाचाजी फौरन ही झोले से गगरीनुमा लोटा निकालकर नीचे कूदे। और दो मिनट में पानी लाकर सेठजी के लोटे और गिलास में भर दिया, और भी जिन्हें जरूरत थी चाचा से माँग लिया। चाचाजी फिर अपनी गगरी भर लाये। मुखमार्जन का सामान सबके पास था नहीं। चाचाजी ने अपना बनाया हुआ नायाब मंजन सबको दिया। अब तो सभी सहयात्री चाचाजी की इस परोपकार-वृत्ति देखकर उनका आदर करने लगे। नाश्ते-पानी के समय सबने उन्हें निमंत्रित किया। किन्तु चाचाजी ने

ब्राह्मणत्व का अभिमान प्रकट करते हुए नम्रता से निवेदन किया कि बिना स्नान किये मैं कुछ खाता-पीता नहीं। इसका प्रभाव सब पर पड़ा—विशेष कर सेठजी पर। उन्होंने कहा—'अच्छा महाराज, अगले ठहराव पर झट में स्नान कर लेना, म्हारे पास घरको बनायड़ो, पूरी साग है! खरीदने—खरीदने का काम नहीं।' ऐसा ही हुआ। बर्दवान में चाचाजी ने डटकर जलपान किया, और सेठजी की जयजयकार मनाई।

यहाँ चार मुसाफिर उतरे, और सात चढ़े। डब्बा फिर भर गया। कुछ को बेंच के नीचे बैठना पड़ा। इसके बाद जो गाड़ी खुली तो दुनिया भर के विषयों पर गप-शप और विवाद शुरू हुआ। खास कर युद्ध, सिनेमा और स्वराज्यपर ही काफी बहस हुई। किसी विषय पर बात शुरू होती, विषयान्तर पर लोग बहक जाते, चाचाजी भी सभी विषयों में जमकर भाग लेने लगे।

एक सज्जन जो बर्दवान से सवार हुए थे, छिपी निगाहों से सबके चेहरे और असबाब घूर रहे थे। (जो वास्तव में आबकारी के चर थे) उनकी दृष्टि हर तरफ से घूम कर चाचाजी और उनके विचित्र सामानों पर अटक जाती। उन्होंने उनसे पूछा—'कहाँ तक जायँगे ?' चाचाजी—'जहाँ तक गाड़ी चली चले।' उन्होंने कहा—'ओ, तब आप कलकत्ता चल रहे हैं ?' चाचाजी—'जी हाँ।'

फिर भंगघोटना की ओर संकेत करके उन्होंने पूछा—"इसके भी प्रेमी हैं आप ?"

चाचा जी—'बिना प्रेमी हुए ही प्रेम-देवता का अस्त्र लिये चलता हूँ ? क्या आप भी शौक रखते हैं ?' उन्होंने जरा झेंप दिखलाते हुए कहा—

"हाँ जरूर; मगर बाजारू और मामूली से सन्तोष नहीं होता।"

चाचा जी—'अजी मैं ऐसी चीज़ दूँ कि आप २४ से ३६ घण्टे तक भूले रहें, और इसके बाद जन्म भर याद रखें।' उन्होंने कहा—

"पास में है ?"

चाचाजी—'क्या आप मूर्ख समझ रहे हैं मुझे ? आबकारी के कुत्तोंकी घ्राण-शक्ति बड़ी तेज होती है, इसलिये ज़रा सावधानी से रहता हूँ। पास में तो चुटकी भर भी नहीं है, लेकिन घर पर चलिये। छटाक-आधपाव यों ही दे दूँ, लेकिन अधिक के लिये दाम लगेंगे।'

उन्होंने जोश से कहा—"अजी दाम की चिन्ता न कीजिये! लेकिन बात पक्की रही।"

चाचाजी—'एकदम पक्की। मगर (धीरे से) मैं बिना टिकट हूँ। जल्दी में ले नहीं सका।"

उन्होंने कहा—"कोई चिन्ता न कीज़िये।"

हवड़ा स्टेशन पर चाचाजी स-सम्मान और स-सामान उनके

साथ उतरे। गेटकीपर को उन महाशय ने मुस्कुराकर न जाने क्या कहा और फिर दोनों बाहर हुए। उन्होंने पूछा—'किधर चलियेगा ?' चाचाजी ने नरमी से उत्तर दिया—

'देखिये साहब, मेरा यहाँ घर-वर नहीं है, और न किसी से जान-पहचान ही है। पहले पहल कलकत्ता आया हूँ। गरीब ब्राह्मण हूँ। जल्दी में बिना टिकट चढ़ गया। और आपके द्वारा बचकर निकल आया। अब आप जैसा मुनासिब समझिये, कीजिये। मैं तो आपको और आपके बाल-बच्चों को आशीर्वाद देता हूँ।'

इतना सुनते ही महाशय जी की आँखें गुस्से से लाल हो गईं। पकड़ कर ले चले पुलिस में देने। फिर न जाने क्या जी में आया जोर से चाचाजी को ढकेल कर बोले—"बदमाश, पाजी, दूर हो यहाँ से', और तमक कर एक ओर चलते बने। चाचा जी के भी जान में जान आई।

एक कुली ने टोका—"कहाँ जाना है ? लाइए सामान।" दूसरे कुली ने झोली पकड़ कर कहा—"लाइये, मैं ले चलूँ, बड़ा बाजार ही तो जाना है ?" इतने में कई रिक्शेवाले भी आ गये। "रिक्शा चाहिये, कहाँ जाना है," "इधर लाइये, गठरी-मुटरी"। ...चाचाजी ने हवड़ा के इन पंडों से यह कह कर छुटकारा पाया कि 'अरे बाबा तुम लोग कृपा करो, मैं अपनी चरणदास की जोड़ी पर जहाँ जाना है खुद चला जाऊँगा।' आगे बढ़ने पर चाचाजी ने

देखा कि बस और ट्राम में इतनी रेलापेली और भयंकर भीड़ है कि लोगों का चढ़ना-उतरना क्या, ठीक तरह खड़े रहना भी कठिन है। भीतर जगह न मिलने से लोग पायदानों और बस के पीछे खड़े हैं — ड्राइवर और कण्डाक्टर परेशान हैं — पुलिसवाले हथकंडे से कुरेद रहे हैं। फिर भी ठेलम-ठेल और घुस-पैठ की कला-बाजियों का दम बेतरह घोंटा जा रहा है। चाचाजी घबड़ा कर बोल उठे—"बाप रे बाप, युद्ध ने मानो, मगर हर जगह-हर रूप में अपने जर्म्स फैला रखे हैं।" एक पुलीसवाले से उन्होंने पूछा—"क्यों भाई, आदमी ज्यादा बढ़ गए हैं, या ये सवारियाँ ही कम हो गई हैं?" उसने लाटसाही ढङ्ग से उत्तर दिया - "दोनों बातें हैं, मगर तुम्हें मतलब? चलो एक किनारे हो जाओ।" चाचाजी एक ओर हो गये। अखबार बेचनेवाले चुने हुए समा-चारों को, चुने हुए लहजे में चिल्ला रहे थे। चतुराननजी आन-न्दित हुए। इनकी ही तरह और भी कितने सुकृतिस समाचार-जिज्ञासु हाकरों के पास पहले से ही इस ताक में खड़े थे कि ताजा खबरों की एक-दो झलक मिल जाये। कई तो सिर्फ मुख्य पृष्ठ का हेडिङ्ग ही देख पाये थे कि हाकर की फटकार सुन कर चलते बने। कई ढीठ फटकार सुनने पर भी पन्ने उलटने लगे तो हाकर ने मजबूरन पत्र छीन कर उन्हें धता बताया। चाचाजी ने रूपक रचा। एक शांत स्वभाववाले हाकर के समीप जाकर बोले—"क्यों जी इसके सम्पादक ऑफिस में ही रहते हैं या और

कहाँ ? उनसे मिलना है। मैं रिश्ते में उनका गाँव घर का चाचा हूँ, और इस पत्र का लेखक भी। क्या आज मेरा कोई लेख छपा है—शास्त्री बुद्धिसागर के नाम से ?" हाकर एक प्रति उनके हाथ में देकर बोला—"आप खुद देख लीजिये। सम्पादक जी के बारे में। कुछ नहीं मालूम। आफिस का पता इसी में छपा है।" जो कुछ देखना था चाचाजी चटपट देख पत्र वापस करते हुए चलते बने।* नये पुल पर उनकी निगाह गई। चौंक कर बोल उठे—"ओह, कितना विराट, कितना विचित्र, कैसा सुन्दर-असुन्दर का सम्मिश्रण। वाह, तारीफ़ है बनानेवाले की।" फिर पुराने पुल को देखा। उपेक्षिता नायिका की तरह,—सौतिन की सताई हुई सीता की तरह,—एक ओर उदास और मलीन वेश में पड़ा हुआ है। तख्तबन्दी ने गेट बन्द कर रखा है। मानों प्रियतम ने एक विदेशिनी विशालकाया-लम्बोदरी सुन्दरी के लिये सब कुछ खोल कर अपनी गृहस्थ-दलित यौवना-जीवन-संगिनी का साथ छोड़, बसे उसी के जर्जर हृदय-कपाट में बन्द कर, उसके लिये सब कुछ बन्द कर रखा है। हाय रे स्वार्थी संसार! जिसने करोड़ों-अरबों को कलेजे से लगा कर पार उतारा, दर्जनों तरह की लाखों सवारियों को अपने ऊपर से आने-जाने दिया, लाखों स्टीमरों को कलेजा चीर कर इधर-से-उधर किया, न जाने कितने ज्वार-भाटे का आलिंगन किया, पचासों साल से भागीरथी की कमर में कमरबन्द की तरह शोभायमान रहा—उसी की यह दशा ?'

---

* उस समय का चित्र है, जब नया पुल बना ही था—और पुराने पुल में घेरा लगा दिया गया था।

चाचाजी भावुकता में अधिक न बहे, क्योंकि चिलचिलाती धूप सर पर आग बरसा रही थी; और पेट में चूहे उछल-कूद रहे थे। नये पुल का आनन्द लूटते हुए पार पहुँचे। देखा, यहाँ बहुत कुछ अदल-बदल गया है। ट्राम का जंकशन, प्लेटफार्म, नये ढङ्ग से बन गये हैं। फिर देखा उसी के पास टीन का घेरा जो पूरब से दक्षिण कोण बनाता हुआ पश्चिम घूम गया है—पुराने पुल के पूर्वी गेट तक, दूसरी ही 'गंगा' बह रही है। 'सरस्वती' की लुप्त-लुप्त धारा की तरह उसकी सहस्र धाराएँ भी राजपथ में लुप्त हो रही हैं। कइयों को देखा चाचाने 'धाराओं' पर बैठकर धार बहाते हुए। इनकी लघुशंका भी जाँघिये में तीव्र शंका उपस्थित करने लगी। चाचाजी जैसे ही बैठे कि एक महातीव्र दुर्गन्ध इनकी घ्राण-शक्ति को चुनौती दे गई। फिर उन्होंने ध्यान से देखा कि वहाँ तो वैतरणी का एक फैला हुआ सूक्ष्म संस्करण अपनी सम्पूर्ण कलाओं से शोभायमान और सुगन्धायमान है।

एक कान्स्टेबिल ने डाँटकर पूछा—"पेशाब क्यों किया ?"

चाचा—'ज़रा नज़र घुमाकर देखो, यह सिर्फ पेशाब करने की ही जगह है।'

कां०—'ओ, तब चलो थाने।'

चाचा—'मगर यहाँ तो पेशाब ही खाता हो गई—लघुशङ्का को ऐसी दीर्घशङ्का हुई…'

कां०—'बस छोड़ो बक-बक, चलो मेरे साथ।'

चाचा--'साथ तो जहाँ कहो, चलने को तैयार हूँ, मगर बक-बक कैसे छूट सकती है सिपाही जी।'

का०—'बड़े अजीब हो जी? आखिर तुमने यहाँ पाखाना-पेशाब क्यों किया?'

चाचा—छिः-छिः-छिः; यह क्या आप मुँह से निकाल रहे हैं?

का०—'तो, क्या कर रहे थे—यहाँ?'

चाचा—'आया तो था मैं पेशाब ही करने, लेकिन।'

का०—'बड़े बातूनी हैं आप! खैर, जाइये, मगर फिर कभी—'

चाचा—'इस 'ज़रूरत-रफ़ा-ऐफ़ाहे आम' के पास न आइएगा, यही न? अच्छा भाई, कभी न आऊँगा।'

चाचा एक धर्मशाले के दरवाजे पर पहुँचे। देखा, उसके फुटपाथ पर, धर्मशाले के मालिक के एक सम्बन्धी—जो धर्मशाला में ही ठहरे थे—का छोटा लड़का टट्टी फिर रहा है। चाचा की विचित्र सूरत देखते ही, उसके देवता कूच कर गये। चिल्ला कर भीतर भागा। अन्दर से डण्डा लिये दरबान भटकता हुआ बाहर आया और चाचा का देवदुर्लभ दर्शन पाकर कृतार्थ होने के बदले कड़ककर बोला—"यहाँ ठहरने की जगह एकदम नहीं है।" उसी लहजे में चाचा ने जवाब दिया—'और यहाँ लड़के के टट्टी फिराने की जगह है?'

दरबान—'क्या नहीं है? चाहे कलकत्ता के फुटपाथों पर देख आयें। और या बढ़कर मिनीमें इसका जमघट देखा। एक—कोचवार, कूड़े करकट और फलों के छिलके तो आम तौर पर बिखरे ही रहते हैं।'

चाचा "तुम्हें हर जगह की क्या खबर?"

दर०—"पच्चीस साल से दरबानी करता हूँ। और कलकत्ते के दरबान घर-घर के 'नाई' होते हैं। इसके अलावा यहाँ के एक मासिक पत्र में हर तरह की रचनाएँ छपवाया करता हूँ। इसलिये कलकतिया दाँव-पेंच भी मोटा-मोटी समझ लेने की चेष्टा किया करता हूँ।"

चाचा—"यार, तुम तो पूरे घुटे हुए निकले। अफसोस यही है कि मेरा-तुम्हारा साथ न रह सकेगा। खैर, थोड़ी देर यह। सुस्ता लेने दो, क्योंकि सारी रात रेलगाड़ी परेशानी में बीती, और स्टेशन से यहाँ तक पैदल ही आ रहा हूँ-जिस पर यह बोझा और ऊपर से रवि देवता की अग्नि-वर्षा। जरा ठंडाई-वंडाई छनेगी, फिर चित्त को शान्ति प्राप्त होगी।"

दरबान—'ठंडई? यानी बूटी-भाँग?'

चाचा—"सोमरस कहो, सोमरस। जानते हो, देवताओं ने इसके लिये असुरों से २८ हजार वर्ष तक युद्ध किया, तब यह दिव्य बूटी हाथ आई थी।'

दरबान—'मगर कलकत्ते में तो १५ दिनों से इसकी दुकानें बंद हैं, फिर आपके पास?'

चाचा—'चतुरानन चाचा के चमत्कार को तुमने अभी देखा ही क्या है। अच्छा, क्या तुम भी भंगी हो ?'

दरवान—"अरे राम, राम, राम !"

चाचा—"मतलब यह कि भंग भवानी के भक्त हो ?"

दरवान—"आदतन छाननेवाला हूँ। नहीं मिलती तो सौंफ इत्यादि के साथ तांबे का पैसा घिसकर या गाँजे में से बीज वगैरह छाँट कर, उसे ही पीस कर पी लेता हूँ।"

चाचा—'मत घबराओ' मैं कहीं भी रहूँगा, तुम्हारे लिये नित्य सन्ध्या समय एक चकाचक ग्लास पहुँचा जाया करूँगा।"

दरवान—'क्या करूँ, जगह तो नहीं है-फिर भी आपसे ऐसा प्रेम हो गया है कि कुछ न कुछ प्रबन्ध करना ही पड़ेगा।'

कहना नहीं होगा कि चाचाजी को छोटी सी—मजे की कोठरी मिल गयी।

गहरी छानने के बाद स्नानादि से निबटने पर चाचाजी के सामने वही समस्या आ उपस्थित हुई, जिसका समाधान आज तक न हुआ—और न कभी होगा। चाचाजी के ही शब्दों में वह सनातन है—अनादि है—अनिवार्य्य है—व्यक्तिगत है—सामाजिक है—सामूहिक है—धार्मिक है—राजनीतिक है—वही जीवन है—वही सृष्टि है—अर्थात् पेट की समस्या। उन्होंने दरवानजी से कहा भूमिका बाधकर—'चूहे बड़े जबरदस्त हैं ?'

दरवान—'अजी, कुछ न पूछिये, बिल्ली-बिल्ले की हिम्मत नहीं इन्हें छेड़ने की, यहाँ के चूहे नामी होते हैं।'

चाचा—'और उछल कूद रहे हैं—किस तरह ? मानों घुड़दौड़ मचा रहे हों।'

दरबान—'कहाँ हैं ? ऐसा न हो कि सामान नुकसान कर दें। बड़ी कठिनाइयों से खदेड़े रहता हूँ। किधर हैं ? मुझे तो दिखलाई नहीं पड़ते।'

चाचा—'ये दिखलाई नहीं पड़ने के' अनुभव करने के हैं।'

दरबान—'क्या कह रहे हैं आप ?'

चाचा—'ठीक कह रहा हूँ। भइया, वे उछल रहे हैं—हुरदंग मचा रहे हैं और बेतरह मचा रहे हैं।'

दरबान—'आखिर कहाँ? (हँसकर) क्या रंग में आ गये गुरु।'

चाचा—'तभी तो रंग बदरंग हो रहा है। सच कहता हूँ—चूहे कूद रहे हैं—बेतरह कूद रहे हैं।'

दरबान—'ओह, आप तो बुझौवल बुझा रहे हैं। साफ-साफ कहिये न ?'

चाचा—'तुम कहते हो, मैं लेख-कविताएँ रचा करता हूँ—महावरा भी नहीं जानते कि 'चूहे कहाँ कूदा करते हैं ?'

दरबान—'कहाँ कूदा करते हैं ? (कुछ सोचकर) अपनी माँदा के पास-जिसमें-अन्न के बोरों पर।'

चाचा—'बस रह गये तुम वही…। अरे बच्चू, चूहे कूदा करते हैं—खाली पेट में, समझे। यही महावरा है।'

दरवान—'तो ग़लत है। चूहे को कूदना चाहिये वहाँ, जहाँ अन्न का भंडार भरा है। ग़रीबों के यहाँ-ख़ाली पेट वालों के यहाँ, इनके कूदने का मुहावरा बदल देना चाहिये।'

चाचा—'अच्छा भईया, इस विषय पर फिर हमलोग विचार करेंगे। अभी तो मूल समस्या-समाधान का उपाय होना चाहिये। मारे भूख के अँतड़ियाँ अन्तर्वेदना के टूटे तार पर करुण विहाग अलाप रही हैं।'

दरवान—'वाह, क्या छीला है छायावाद को तुमने गुरु! कार्ली किरिया, चित लहालोट हो गया। अच्छा, ठहरिये। अभी आया।' इतना कहकर दरवान अपनी कोठरी में जाकर, क़रीब सेर भर मिठाइयों का चूरा—जिसमें कुछ लड्डू, सूखी बूँदिया, सूखी जलेबियाँ और सुहाली थे—ले आया, और चाचा के सामने रखकर बोला। 'हमारे सेठजी के यहाँ विवाह था, वहीं से यह सब आया है। अभी जलपान कीजिये, फिर रसोई—।'

चाचा—'थोड़ा तुम भी लो, अकेले आनन्द नहीं आयेगा।'

दरवान—'मैं जलपान करके उठा ही था कि आपका शुभागमन हुआ। आप खाइए।'

फिर क्या था। चाचा अप्रतिद्वन्दी रूप से मैदान मारने लगे। उनके मुखयंत्र की दंत-चक्की अविराम गति से चक्कर लगाने लगी। बीच-बीच में बातचीत भी होती जाती थी। चाचा ने पूछा—'तुम्हारा नाम ?'

दरबान ने उत्तर दिया—'राजकुमार, और आपका ?'

चाचा—'चतुरानन चौबे।'

दरबान—'मगर मैं तो चाचा ही कहूँगा।'

चाचा—'ठीक है। बड़ा आनन्द रहेगा-जब मिल बैठेंगे दिवाने दो।'

राजकुमार—'अच्छा चाचा, तुम यहाँ क्या करने आये ? कोई कारोबार करोगे या—।'

चाचा—'मैं यहाँ क्यों आया ! यह तो इस प्रांत के आकर्षण से पूछो, ब्रिटिश साम्राज्य की दूसरी महानगरी के जागते-जादू से पूछो, जिसके चुंबक से खिंचकर हमारे पुरखा यहाँ भेंड़ बन जाते रहे हैं। आखिर सारा कलकत्ता यहाँ क्यों बसा हुआ है ? तुम्हीं किसलिये आये—बताओ ! बस, जो सबका उद्देश्य है, वही मेरा भी है।'

राजकुमार—'मगर उद्देश्य को कार्यरूप में परिणत कैसे कीजियेगा ?'

चाचा—'पहले तो दर्शनीय-स्थानों का दर्शन करूँगा। इसके बाद समाचारपत्रवालों से मिलूँगा, सार्वजनिक संस्थावालों से भेंट करूँगा। सिनेमावालों को भीतर से देखूँगा। काउंसिल एसेम्बली-कारपोरेशन के सदस्यों को निकट से जानकारी प्राप्त करूँगा। हर तरह की सभा, परिषद्, सुसायटी, गोष्ठी, एसोसियेशन, समाज, दल, समिति, सम्मेलन आदि में भाग लूँगा। इसके अतिरिक्त……

राजकुमार—'ठीक है, मालूम हो गया। किन्तु सबसे प्रथम आपका राशनिंग का प्रबन्ध करना होगा। कल सबेरे चलेंगे।'

चाचा—'अच्छी बात है।'

[२]

दूसरे दिन, राजकुमार दरबान के साथ चाचा वार्ड के रेशनिंग आफिस पहुँचे। काफी लम्बा-चौड़ा दफ्तर था। डिपार्टमेण्टल तख्तियां टँगी थीं। उन्हीं के नीचे बाबू लोग कुर्सी-टेबल पर डटे काम में कम, लेकिन बातोंमें ज्यादा मशगूल थे। प्रार्थियों की काफी भीड़ थी। कोई रेशन कार्ड के लिये दर्खास्त देने आया था, कोई लेने आया था, कोई केवल पूछताछ करने ही आया था। प्रार्थियों की गिड़गिड़ाहट, बिनती, उज्र, जानने की इच्छा और बाबुओं की हुकूमत, हुज्जत, अँकड़, व्यस्तता-प्रदर्शन आदि अध्ययनीय और मनोरञ्जक थे। प्रायः चार मिनिट तक चाचा घूर-घूरकर स्थिति का अध्ययन करते रहे। फिर एकाएक बहुत ही गम्भीर आवाज में, 'चन्द्रकान्ता' के ऐय्यारों की परिचित बोली में बोल उठे,—"जय माया की"। सभी चौंककर इनकी ओर देखने लगे। विचित्र सूरत और विचित्र वेश देखकर कई विद्रूप में विहँस उठे। एक दो के मुख से व्यंगात्मक अस्फुट शब्द भी निकले। अधिकांशों को कौतूहल हुआ। एक बाबूनुमा वर्दीधारी पास आकर बोला—"आपनी की चान ?' राजकुमार ने जवाब दिया—'हम लोगों को रेशन कार्ड चाहिये।' अङ्गरेजी सिनेमा-एक्टर के अप्रभंगी पोज में मुट्ठी बाँध, अंगूठे से एक ओर इशारा करते हुए-वर्दीधारी ने कहा

'उधिके जान।' चाचा भतीजे वहाँ पहुँचे। वहाँ एक मलीन वस्त्रधारी-छोकरानुमा बाबू कुर्सी पर अँकड़ा बैठा था। दीवार में तख्ती टंगी थी 'इन्क्वायरी'। यहाँ प्रायः डेढ़ मिनट तक उसके सामने खड़े रहे, किन्तु उसने कुछ नहीं पूछा। चाचा ने कहा—'रेशनकार्ड चाहिये।' वह अनसुनी करके दो नवागन्तुकों से न जाने क्या फुसफुस कर, उन्हें दो छपे फार्म देकर बीड़ी सुलगाने लगा। चाचा ने फिर कहा—'अजी सुनते हो नवाब साहब, मुझे रेशन कार्ड चाहिये।' उसने बीड़ी का धुआँ ऊपर फेंकते हुए कहा— 'ईहां नेई, उ खाने रेशन कार्ड मिलता, उदिक जायो।' चाचा की त्योरी चढ़ी, बोले—'अभी तो वह बतला गया कि यहाँ मिलता है और तुम बोलते हो वहाँ। बात क्या है?' उसने धीरे से कहा 'हाम ठीक बोलता, ईहाँ रेशन कार्ड नेई मिलता। ईहा सिरीफ उसका दरख्वास्त करने का फार्म मिलता।' राजकुमार ने कहा 'अरे हाँ हाँ, पहले तो वही चाहिये बाबू! दीजिये न!' वह बोला— 'अभी फिनीस हो गया।' चाचा गुर्रा उठे 'तब कब मिलेगा? किसके पास मिलेगा?' 'हाम नेई बोलने सेकता अभी।' कहता हुआ वह कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। चाचा आपे से बाहर हो गये। टेबल पर जोर से हाथ पटककर गरज उठे। दफ्तर में हलचल मच गयी। कुछ साथी बोल उठे 'हाँ साहब, इनकी यही आदत है। किसी को सीधा जवाब नहीं देते।' दफ्तर के बड़े बाबू ने डाँट कर पूछा—'की व्यापार आछे रे धीरेन?' धीरेन—'केच्छूना सर' इ

भद्रलोक अकारने आमाके...।' चाचा बीच में ही बात काटकर बोले...'मैं दरख़ास्त का फार्म माँगता हूँ तो ये कहते हैं—खत्म हो गया! पूछता हूँ कब मिलेगा तो कहते हैं—अभी हम बतला नहीं सकते!' बड़े बाबू इन्क्वायरी बाबू पर बरस पड़े—'इफ फार्मस् आर नाट विथ यू, देन यू उड हैव काल्ड फौर इट!'—इतना कह कर पियन के हाथों उन्होंने फार्म का बण्डल भेजवा दिया। चाचा ने चार माँग लिये—देखा तो फार्म अङ्गरेजी में छपे हैं। राजकुमार से बोले—'हिन्दी में भी क्यों नहीं छपवाया गया? चलो, बड़े बाबू के पास!' राजकुमार ने रोका—'चाचा, इस बारे में बखेड़ा करना बेकार है। हमलोग साधारण व्यक्ति हैं। हिन्दी के हिमायती बड़े लोग—हिन्दी संस्थाएँ, हिन्दी-पत्र इस बारे में चूँ तक नहीं करते, तो हम लोग क्या कर सकेंगे!' इतने में एक दूसरा वर्दीधारी पहुँचा और बोला—'फार्म भरवाना हो तो उस बाबू से लिखवा लीजिये।' दोनों उस जगह पहुँचे। देखा...यजमानों की भीड़ है और फी फार्म दो आने लिखाई वसूल की जा रही है। चाचा बोले—'चार फार्म हैं।' वह बिना आँख उठाये ही बोला—'आठ आना देने होंगे।' चचा फिर गर्म हुए, लपके बड़े बाबू के पास, बोले—'अजी साहब वह फी फार्म दो आने लिखाइ माँगता है। गरीब लोग—भूखों मरनेवाले कहाँ से दे सकते हैं?' बाबू भी तमककर बोले—'वो लिखनेवाला भी गरीब हाय—हमारा नौकर नई है—सरकार का नई है।

आपका भी नहीं है, फिर किस माफिक खाली पेट लिखेगा ?' चाचा ने उसी लहजे में जवाब दिया- -'तो ग़रीब-ग़रीब को खाने लगे—यही इन्तज़ाम है आपका ?' बाबू भड़क उठे-'जाओ बाबा, हमारा माथा मत खराब करो। हम लोग भी आदमी हैं।' चाचा धीरे से बोले 'हाँ, इसमें शक की गुंजाइश तो नहीं थी; लेकिन—' 'लेकिन-वेकिन कुछ नई—तुम फार्म लिखवा कर ले आओ। और हाम कुछ बात नेई करने चाहता।' रंग-बदरंग होते देख राजकुमार चाचा का हाथ पकड़कर बाहर ले आया। दूसरा वर्दीधारी फिर पहुँचा। वह ए० आर० पी० का कर्मचारी था। बोला—'देखिये, काम सहूलियत से बनता है, झमेला करने से कुछ फायदा नहीं। किसी जान पहचानवाले से लिखवा लाइये। यह तो मेहनताना लेगा ही।' चाचा ने उससे पूछा—'अच्छा दोस्त, यह तो बताओ—हर एक को कितना अन्न मिलता है ?' 'पाव भर आटा या पाव भर चावल' वह बोला—

चाचा—'मगर कितने ही ऐसे हैं जो तीन पाव एक दफ़ा खाते हैं—सो ?'

वह—'कुछ भी हो, हर एक को पाव भर ही मिलेगा।'

चाचा—'तीन पाव खानेवाले को भी, और आध पाव न पचा सकनेवाले को भी पाव भर ? अच्छा, देखो भाई, हम भी तीन पाव खानेवालों में से हैं। क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है, जिससे कि'—

वह—'अजी कलकत्ते में किस बात का उपाय नहीं है ? ठंढे मन से, हिम्मत से, चालाकी से, मिल-जुल कर, क्या नहीं किया जा सकता ?'

चाचा—'तो बोलो क्या करना होगा ?'

वह—'मगर आप कुछ अजीब से हैं, मैं उपाय बताऊँ और आप...!'

चाचा—'नहीं-नहीं, अब कुछ नहीं करूँगा। जैसा आप कहेंगे, वैसा ही होगा।'

वह—'तो सुनिए, आपको ६ रेशनकार्ड लेने होंगे, जिनमें तीन तो मेहनताने में हम लोग ले लेंगे और तीन से आपका काम चल जायगा।'

चाचा—'यह कैसे ?'

वह—'ऐसे कि ६ वार्डों से इसका इन्तजाम करना होगा, और नाम में थोड़ा हेर-फेर कर दीजियेगा। लेकिन आप का नाम बदलना होगा।'

राजकुमार—'बाप का नाम बदलना तो...'

वह—'अरे, फायदे की गुंजाइश हो तो लोग बाप तक को बदल देते हैं, और आपको तो सिर्फ नाम बदलना है।'

चाचा—'अच्छा, मंजूर। विष्णु के सहस्र-नाम की तरह हमें अपने बाप के भी कई नाम रखने में आपत्ति नहीं है। मगर छः हों रेशनकार्ड के माल के पैसे हम नहीं देंगे।'

वह—'यह भी कहने की बात है। आप सिर्फ अपने तीनके ही दाम देते रहेंगे। लेकिन पहले-पहल आपको छहों वार्डों में जाना होगा। फिर कार्ड मिल जाने पर तीन दिन—तीन जगह रेशन लाने तो जाना ही होगा।'

चाचा—'लेकिन भाई, कुछ बखेड़ा तो नहीं होगा ?'

वह—'अजी आप भी कैसी बातें करते हैं ?' सुनिये, करीब ५० लाख रेशनकार्ड बांटे जा चुके हैं। और क्या आप यह समझते हैं कि कार्ड एक-एक को मिला है ? २०-२० कार्ड अकेले लेनेवालों को मैं जानता हूँ। और भी सुनिये। उनमें कई लाख आदमी अपने-अपने कार्ड छोड़कर या बेचकर देश चले गये, और उनके कार्डों का इस्तेमाल होता है। खैर, तो बात पक्की रही न ?'

चाचा—'हाँ साहब पक्की—एकदम पक्की।'

आठ दिन के अन्दर ही सब इन्तजाम हो गया।

[३]

धीरे-धीरे चाचाजी की चर्चा चारों ओर फैलने लगी। राजकुमार चलता-फिरता और जबानी विज्ञापन था ही। भिन्न-भिन्न स्वार्थों के स्त्री-पुरुषों का आना-जाना आरम्भ हुआ। चाचा हरफन मौला ठहरे। किसी को असाध्य रोग की दवा बतला रहे हैं, किसी को भूत, वर्तमान, भविष्य समझा रहे हैं। किसी के लिये झाड़-फूँक अथवा टोना-टोटका की व्यवस्था कर रहे हैं। कभी सत्यनारायण भगवान की, कभी एकादशी-माहात्म्य की, तो कभी शनीश्चरदेव की कथा कह रहे हैं, कभी कीर्तन का आयोजन कर

रहे हैं। इन कार्यों के लिये चाचा बाहर भी जाने लगे। सबसे बढ़कर उनका बनाया हुआ 'वज्रदंती' नामक दंतमंजन खूब चलने लगा। इन सबसे काफी आय भी होने लगी। इस तरह चतरानन चाचा चकल्लस के साथ चौतरफी चाँदी चीरने लगे।

रात में अकसर राजकुमार के मित्रों की मण्डली—जिसमें दूसरे-दूसरे दरबान एवं उनके मित्र, प्रेसों के निम्न कर्मचारी तथा उन्हीं की श्रेणी के अन्य लोग होते—जुटती। गपशप, ज्ञानचर्चा, विनोद, गायन तथा कविता-पाठ का रंग जमता। कहना नहीं होगा कि चाचा सभापति और राजकुमार मन्त्री की तरह मालूम होते। कभी-कभी लोग चाचा से प्रश्न पूछते, तो वे अपने अलबेले ढंग से बड़ा ही मनोरंजक उत्तर देते। एक दिन एक ने पूछा-'अच्छा चाचा जी यह सब मानते हैं कि युद्ध संसार के सारे अनर्थों की जड़ है, फिर भी सब मिलकर उसको रोकने का उपाय क्यों नहीं करते ?'—

चाचा ने उत्तर दिया—'अरे भइया' युद्ध तो सृष्टि के आदि-काल से ही चला आता है। बल्कि ऐसा समझो कि अगर क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर—यानी पाँचों तत्वों में संघर्ष न होता तो किसके बाप की शक्ति थी कि सृष्टि रचना करता ? और सुनो, अगर देवताओं तथा दानवों में द्वन्द्व न होते रहते तो भगवान के अवतारों का पता लापता—हावड़ा में भी न लगता। भला कोई बताये तो कि अगर 'लक्ष्मी' न होती तो उसके वाहनों के

बिना दुनियां कैसे चलती ? 'धन्वन्तरी' न टपके होते तो सारा संसार ही अस्पताल बन गया होता। 'ऐरावत' न मिलता तो इन्द्र किस पर चढ़ कर असुरों से लड़ते ? 'अमृत' प्रकट न होता तो देवता अमर कैसे होते ? 'सुरा' न मिलती तो देव-दानव की दुरंगी दुनिया का दिवाला ही निकल गया होता। 'विष' न प्राप्त होता तो हमारे शंकरजी नीलकंठ कैसे कहलाते ? मनुष्यों में हत्याओं एवं आत्महत्याओं की हलचल से कचहरियों के ऊधम-ऊभम-ऊमर खेत में हल कैसे चलता ? 'कौस्तुभ रत्न' के बिना विष्णु भगवान शोभा हीन ही रहते। 'कल्पवृक्ष' न हाथ लगता तो देवलोक मुफलिस महल्ला करार दे दिया जाता। मतलब यह कि सुरासुर युद्ध का ही परिणाम था कि समुद्र-मंथन के द्वारा इस प्रकार के उपयोगी चौदह रत्न निकले। और भाई, अगर राम-रावण में लंका-कांड न मचा होता तो बाबा तुलसीदास तथा रामायण की प्राप्ति कहां से होती ? यदि कौरव-पाण्डव का मशहूर महाभारत न मचा होता तो वेदव्यास, श्रीमद्भागवत और गीता के बिना हिन्दू जाति की क्या गति होती ? भीम की भीषणता, अर्जुन की बाणविद्या, द्रोण का रणकौशल, भीष्म की महत्ता, विक्रमादित्य का विक्रम, खूनी अशोक का सशोक परिवर्तन, चन्द्रगुप्त की रणचातुरी, पृथ्वीराज का पराक्रम, आल्हा-ऊदल की वीरता, नेपोलियन के नर-संहार और हार का नाटक, अमेरिका की स्वाधीनता, फ्रांस की क्रान्ति, दकियानूसी रूस की कायापलट, ब्रिटेन का प्रजातन्त्र, चीन

की पिनकट्टूट आदि-आदि हम युद्ध के बिना कैसे जानते? मैं कहता हूँ कि अगर विश्व-लाड़िली लड़ाई की कृपा न होती तो हस्तिनापुर की हसरत भरी हस्ती पर दिल्ली की दीवार कैसी खड़ी होती? संयोगिता के संयोग से पृथ्वीराज और जयचन्द न लड़े होते तो मध्ययुग के भारत का इतिहास पढ़ने के नाम पर लोग कोंपर चाटते। शिवाजी, औरंगजेब, अकबर, प्रताप, तेगबहादुर आदि की कीर्ति-अकीर्ति तथा चित्तौर के जौहर-व्रत का बीज वपन कैसे होता यदि युद्धदेव दया न दर्शाते? यदि वीरता की जननी युद्धकाली अपनी कराल करामात न दिखाती तो हिन्दी के आदि कवि 'चन्द' और वीररस के रसिया 'भूषण' कहाँ मिलते? यहीं देखो न, अगर आपस में ही लड़ाई-भिड़ाई न हुई होती तो हमारे स्वदेश को सुफेद शासन का सौभाग्य कैसे प्राप्त होता? और कितने ही क्रान्तिकारी एवं सुविचारी देशी नेताओं के नेतृत्व-नृत्य से हमारा नन्हा नसीब निहाल कैसे होता? यह वर्तमान युद्ध न छिड़ता तो चर्चिल, हिटलर, मुसोलिनी, स्टालिन, रूजवेल्ट और तोजो तथा उनके देशों का ज्ञान हम लोगों को किस प्रकार होता? सच तो यह है भाइयो कि संसार के समस्त महापुरुष कृष्ण, ईसा, बुद्ध, मुहम्मद, महावीर, जरदोस्त आदि और उनके धर्म तथा ग्रन्थ युद्ध से ही जन्मे और इन्हीं के लिये संसार में अधिक युद्ध हुए। जिस प्रकार रोगग्रस्त शरीर के लिये जुलाब जरूरी है, उसी प्रकार सदियों की सड़ी हुई सृष्टि के सुधार के लिये युद्ध का जमालगोटा भी जरूरी है।'

एक दूसरे ने पूछा—'अच्छा चाचाजी, युद्ध में जीत किसकी होगी ?'

चाचा—'जिसके पक्ष में भगवान, सत्य और धर्म होंगे।'

वह—'तो, ये किसके पक्ष में होंगे ?'

चाचा—'जिसकी जीत होगी।'

वह—'यह कैसे ?'

चाचा—'कैसे क्या ? यह तो सदा से होता चला आया है कि विजयी ही धर्मात्मा, सत्यवादी और भगवद्भक्त होते हैं। कवि, साहित्यकार, सन्त उन्हीं के गुण गाते हैं और संसार को उन्हीं के आदर्श पर चलने का उपदेश देते हैं।'

दूसरा—'यह तो कहिये चाचा, युद्ध कब तक समाप्त होगा ?'

चाचा—(हँसकर) 'जब सृष्टि समाप्त होगी।'

दूसरा—'क्या मतलब ?'

चाचा—'अरे भाई, युद्ध कभी समाप्त नहीं होता; हाँ, इतना अवश्य होता है कि एक युद्ध दूसरे युद्ध का गर्भ धारण कर लेता है। और जब तक 'सन्तान' पैदा न होती, तब तक 'विश्राम' अर्थात् प्रसूतिकाल शान्ति-युग कहा जाता है। इसमें एक साल का भी समय लग सकता है, दस साल, पचीस साल या सौ साल का भी अन्तर हो सकता है।'

तीसरा—'चाचा, आपके ये विचार बड़े ही विचित्र हैं। इन पर एक पुस्तक लिखिये न।'

चाचा—'लिख तो रहा हूँ, पर छपाऊँगा नहीं।'

तीसरा—'क्यों ?'

चाचा—'कहावत है गँवारों को सब कुछ दे, लेकिन अक़ल न दे, आर्यों ने शूद्रों के लिए वेदों का पठन-पाठन इसीलिये बन्द रखा था।'

राजकुमार—'तब क्या चाचा, आप चाहते हैं कि संसार में गँवारपन रहे ? वे शिक्षित न हों ? आत्मज्ञान प्राप्त न करें ?'

चाचा—'अरे बाप रे, मूर्खों को आत्मज्ञान प्राप्त हुआ और वे समझने लगे कि संसार असत्य है, असार है, यहाँ दुख ही दुख है, तो बस आत्महत्या कर लेंगे। फिर संसार चलेगा कैसे ?'

राजकुमार—'किन्तु शिक्षा के लिये जो इतने उद्योग हो रहे हैं, इतनी युनिवर्सिटियाँ, कालेज, स्कूल, विद्यालय—'

चाचा—'ये सब मूर्खाभिमान-उत्पत्ति-केन्द्र हैं। इनमें किसी को सत्य-ज्ञान प्राप्त नहीं होता।'

एक खद्दरधारी कम्पोजीटर—'अच्छा चतुराननजी, भारत को स्वराज्य कब प्राप्त होगा ?'

चाचा—'जब इसके निवासी मुक्ति के सारे ढकोसलों का परित्याग कर देंगे।'

खद्दरधारी कम्पोजिटर—'ज़रा साफ समझाकर कहिये।

चाचा—'साफ तो यह है भाई कि इस काल्पनिक मुक्ति ने ही—भवसागर से छुटकारा पाने की खयाली बात ने—ही यहाँ वालों

को गुलामी सिखा दी है। पूजा-पाठ, व्रत-त्योहार, मन्दिर, यज्ञ, होम, जप, ईश्वर धर्म ये सब क्या हैं? मुक्ति पाने के साधन! कहा गया है कि इन पर भरोसा करके मनुष्य संसार-सागर से छुटकारा पाता है। इस प्रकार, जो दूसरे पर—दूसरे की शक्ति पर, भरोसा करना सीखते आये हैं, वे अपने पर कैसे भरोसा करेंगे? और जब तक अपने पर भरोसा नहीं करेंगे, स्वावलम्बी—स्वराज्य के योग्य कैसे हो सकते हैं?'

राजकुमार—'तब योगसाधना क्या है? इतने योगी जो योगसाधना द्वारा मुक्ति की कामना करते हैं, सो?'

चाचा—'योगसाधना तो एक प्रकार के व्यायाम का आध्यात्मिक नामकरण मात्र है। और मुक्तिकामना करनेवाले योगी तो स्कूली-परिश्रम से देह चुरानेवाले विद्यार्थी की तरह हैं—जो मानव धर्म—सांसारिक-कर्तव्य में आलस करके, आराम के लिये कहीं भागना चाहते हैं। नहीं तो जैसा कि मैंने पहले कहा है—वे आत्महत्या करनेवाले मूर्ख आत्म-ज्ञानी हैं।'

राजकुमार—'तो सच्चा योगी कौन है?'

चाचा—'ड्राइवर!'

राजकुमार (आश्चर्य से) 'ड्राइवर? किसका?'

चाचा—'मोटर का, बस का, लारी का, रेल का, जहाज का, टैंक का, हवाई जहाज का। जानते हो, इन बेचारे सच्चे साधकों के हाथ में कितनों की जानें रहती हैं। तनिक चूके और गये! मगर ये

कितने सावधान रहते हैं। अतएव, इस युग में यही सच्चे अर्थ में योगी हैं।'

(५)

एक दिन चाचा स्टूडियो देखने चले। इन दिनों (सन् ४०-४१ में) स्थानीय अधिकांश स्टूडियोज में यम बोल रहा था। हरीसन रोड-चितपुर रोड के चौराहे पर ट्राम की प्रतीक्षा में देर तक खड़े रहे। जो आती, खचाखच भरी हुई। रुकती भी तो ५ उतरते १० चढ़ते, १० धक्कमधुक्की करके रह जाते। कुछ फुर्तीले बहादुर ऐसे भी होते, जो लपक कर पाँवदान पर ही लटक जाते। चाचा ने कई बार चढ़ने की चेष्टा की; पर सफल न हो सके। कई धक्के खाने पड़े; एक-दो बार तो गिरते-गिरते बचे। अन्त में उन्होंने सोचा सहूलियत, सुविधा और सज्जनता की आशा छोड़, उसी टेकनिक से काम लेना चाहिये। बस, इस बार जैसे ही ट्राम ने फुटपाथ का आलिंगन किया कि फुर्तीलों के फुर्ती दिखलाने के पहले ही, चढ़नेवालों की भीड़ चीरते और उतरनेवालों को ठेलते, चाचा झट ट्राम में चढ़ बैठे। दो-तीन के पैर दब गये और कुछ को धक्के खाने पड़े। उन लोगों ने इन्हें बुरा-भलाकहना शुरू किया। पर, चाचा अनसुनी कर गये। ट्राम चल पड़ी। कोलूटोला मोड़ पर जैसे ही लेडी सीट की एक जगह खाली हुई कि आप चट आसीन हो गये। दूसरी सीट में एक एंग्लो इण्डियन बुड्ढी बैठी थी। तमककर बोल उठी—"ओ, नो-नो; जनाना सीट हाय,

उठ जाव।" क्या करते, चाचा खड़े हो गये।

धर्मतल्ला में ट्राम बदलते समय चाचा ने देखा कि, यहाँ तो और भी मुश्किल है। चढ़ना और उतरना दोनों, शत्रु व्यूह में घुसने के दाँव-पेंच से कम नहीं है। दो में असफल होने के बाद, तीसरी में चाचा चढ़ ही तो गये। मगर हरीसन-चितपुर-मोड़ से कहीं ज्यादा परेशानी उठानी पड़ी। पसीने से तर-बतर हो गये। भीड़ इतनी थी कि भीतर लोगों का बदन से बदन छिल रहा था और बाहर पाँवदान पर भी यारों में धक्कम-धुक्की मच रही थी। कुछ दूर बढ़ने पर थके हुए चाचा बैठने की तरकीब सोचने लगे। नजर पड़ गयी लेडी सीट पर। देखा, दो मर्द महाशय विराजमान हैं। और जब ट्राम-स्टेशन आता तो दोनों देख लेते कि कोई सीट की अधिकारिणी तो नहीं आ रही है। चाचा धीरे-धीरे उस-नीति का सहारा लेकर उनके पास जा पहुँचे। थियेटर रोड की मोड़ पर ट्राम ज्यों ही रुककर चलने लगी कि चाचा ने कहा "लेडी...लेडी सीट।" वे दोनों बेचारे हड़बड़ा कर उठ खड़े हुए और चाचा ने गद्दी दखल कर ली। दोनों दाँत पीसकर चाचा को कुछ सुनाना ही चाहते थे कि उनमें से एक ने साथी का साथ छोड़ कर, अवसरवादियों की तरह, चाचा का साथ दे दिया—अर्थात् चाचा के बगलवाली खाली जगह में बैठ गया। चाचा मुस्करा उठे।

टालीगंज डिपो में ट्राम से उतरकर चाचा ने एक इङ्गलिश वेप-

धारी 'मोशाय' से पूछा—"फिल्म कम्पनी का स्टुडियो किधर है ?" वह बोला—"आप किस कोम्पानी में जायेगा ?"

चाचा—"किसीमें भी ।"

वह—"ओ, तब तो इधर भी जाने सकता, उधर भी जाने सकता है"—कह कर चलता बना। चाचा भी जिधर उसने बताया था, एक तरफ चल पड़े। कुछ दूर आगे, एक कम चौड़ी और ज्यादा लम्बी चहारदीवारी से घिरे भूतहे मकान के समान एक बड़े भारी घर के सामने जा खड़े हुए। मालूम हुआ जैसे किसी बिगड़ी जमींदारी का हथियार हो। वैसा ही लम्बा-चौड़ा-ऊँचा। मरम्मततलब उसके फाटक का सहारा लेकर—एक टूटी तिपाई पर एक मरियल नेपाली बैठा कभी ऊँघता कभी जम्हुआई लेता था। फाटक के ऊपर साइनबोर्ड लटक रही है—"...फिल्म कम्पनी", चाचा लापरवाही से जैसे ही फाटक के अन्दर घुसे कि पहरेदार बोला—"जगह नहीं है।"

चाचा—"वाह, इतनी जगह है, इतनी बड़ी आलीशान इमारत इस बुढ़ापे में भी जवानी की याद में अभी तक जिन्दा है, फिर भी...।" इतने में ही, सामने के नीचेवाले कमरे से आवाज आयी 'आने दो।' चाचा वहाँ पहुँचे। देखा, शायद ऑफिस है। कुर्सी, टेबल, रैक्स, आलमारी, तिजोरी, कागज-पत्र आदि सभी चीजें मौजूद हैं। टेलीफोन भी है। दो अर्ध-वयस्क सज्जन दो कुरसियों पर विराजमान हैं। मगर, चाचा को अनुभव हुआ कि 'कह रहा

है आपसों, यह सब समझो कुछ भी नहीं।' चाचा एक खाली कुरसीपर ज्यों ही बैठने लगे कि गिरते-गिरते बचे। वे लोग भी 'हो' 'हो' करने लगे। चाचा ने देखा कि यह तीन टाँग की कुरसी दीवार के सहारे केवल ऑफिस का डिसिपलिन पालन कर रही है बेचारी। खड़े ही खड़े पूछा—"यही फिल्म कम्पनी है? धर्मेश्री की, बहुत शोर सुनते थे...खैर, यह तो बताइये, इस समय यहाँ क्या हो रहा है?' एक बोला—"अभी तो कुछ नहीं होता, पहले भी काम हुआ, बाद में भी किन्तु होगा।' दूसरा बोला—"आप क्या नौकरी के वास्ते आया है?" चाचा बोले "जी, आया तो था मैं बहुत कुछ के वास्ते, लेकिन हौसला पस्त हो गया।" पहला—"आप पंडित हाय? कविता लिखना आता इस्टोरी भी लिखने सकता?"

चाचा—"जी, कुछ कुछ!"

दूसरा—"कुछ हरज का बात नहीं होगा, आप इस्टोरी दूसरा दिन लाइये और हम बोलता एक फाइनेन्सियर भी ठीक कीजिये। सेठीक बीस हजार रुपैया लगायेगा, बाकी चालीस हजार हाम लोग लगा देगा। तीन महीना में पिक्चर खलास। तीन-चार लाख में बिक जायेगा, तकदीर साथने से ज्यादा भी होने सकता। बस, आधा नफा आप लोगों का, आधा हम लोग लेगा। आप ऐसा कर सकता?' चाचा समझ गये कि दिवालिया कारखाना है। मन में सोच गये, कर्मचारी इतना गिर गया है कि

एक मेरे जैसे साधारण व्यक्ति ने भी बिजिनेसट्रिक खेलता है। प्रगट में बोले "मैं इसीलिये तो आया ही था खैर, सामान वगैरह तो दिखाइये—कैसा है।"

दूसरा—"सामान साब है। केमरा, साउण्ड, लेबोरेटरी, सीनसीनरी, फरनीचर, ड्रेस, आइये देखिये।" तीनों उठ खड़े हुए। चाचा को घुमा-फिरा कर सभी चीजें दिखलायी गयीं, और उनके बारे में समझाने की चेष्टा भी की गयी। चाचा ने देखा, जैसे सभी चीजें किसी सिनो-म्युजियम में रखने लायक हैं, बरसों से बेकार-बेतरतीब पड़ी हुई जिन्दगी के शेष दिन बुरी तरह बिता रही हैं। दीवारों के पलस्तर गिर रहे हैं, कहीं-कहीं वर्षा-पानी के चूते रहने से उनमें जैसे कोढ़ के दाग उभड़ आये हैं। मैदान में घास और जङ्गली झाड़-झंखाड़ उग आये हैं। कूड़े-कर्कटों का उठानेवाला भी शायद नहीं है।

लौटकर सब ऑफिस में आये। पहले ने चाचा से पूछा "आप सिगरेट किम्वा बड़ी-बड़ी खाता है?"

चाचा—"खाता नहीं पीता हूँ।"

दूसरा—"कौन मार्का का पीता?" चाचा ने मन में समझा चच्चू के पास है नहीं, मुझी से जटना चाहते हैं। बोले—"सभी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध मार्के की बीड़ियाँ इस्तेमाल करता हूँ, किन्तु साथ में लेकर नहीं चलता।"

पहला—"अच्छा करता है। हम लोग भी इहाँ नेई पीना, स्टूडियो है न? हुकुम नेई है।"

चाचा—"अच्छा तो जरा माफ़ी दो, इस समय मैं जाता हूँ। फिर आऊँगा।"

दूसरा—"आइए जैसा मैंने बोला, उपाय करके आइयेगा। हम आपको अलग भी कमीशन देगा।"

"ज़रूर आऊँगा।" कहकर चाचा लौटे। गेट पर आकर पहरेदार से बोले—"तुमने ठीक ही कहा था भाई; तुम्हारी जगह के सिवा यहाँ और कोई भी जगह नहीं है— और उस पर तुम विराज ही रहे हो, लाचार लौटा जाता हूँ।"

कहानी

हराम खोर गया था

यह दिलचस्प कहानी लेखक द्वारा सम्पादित साप्ताहिक 'आलोक' [पटना] में बहुत पहले प्रकाशित हो चुकी है। अन्तिम अंश मे कुछ आवश्यक परिवर्तन कर दिया गया है। भगवान् करें, पाठक-पाठिकाओं का भी इस तरह का कुछ खोया हुआ मिल जाय,.........

(१)

प्रोफेसर रणधीर बड़े ही सज्जन और साहित्यिक स्वभाव के सहृदय-व्यक्ति हैं। अत्यन्त रसिक होने पर भी पक्के सदाचारी हैं। अभी तक अविवाहित हैं। निहुँत-कालेज में इतिहास के प्रोफेसर हैं। उसमें जो समय बचता है, अधिकांश साहित्य और समाज की सेवा में लगाते हैं। नवीन ढंग की कविता में आपकी प्रतिभा विकासोन्मुखी है। कहानियाँ भी अच्छी लिखने लगे हैं। हाल ही में आपका एक सुन्दर उपन्यास 'अनुराग' बड़ी ख्याति पा चुका है। अब एक दूसरे की तैयारी कर रहे हैं--- उसी में आजकल अधिक समय लगाते हैं। उन्हें आशा है—यह रचना भी अद्वितीय होगी। आपमें यह एक विचित्रता है कि अप्रकाशित रचनाओं को किसी से भी नहीं दिखाते, और न उसके विषय में कुछ कहते ही हैं। प्रकाशित होने पर एकाएक लोग जब उनकी आश्चर्यजनक प्रशंसा करते हैं, तो उन्हें एक अपूर्व आनन्द आता है।

रणधीर एक अच्छे व्याख्याता, अभिनेता भी हैं। नगर और प्रान्त में आपकी अच्छी ख्याति है। चपरासी से लेकर प्रिन्सिपल तक आपको प्यार करते हैं—यही कारण है कि इस लोकप्रियता ने जहाँ इतने मित्र और सहानुभूति रखनेवाले बना छोड़े हैं, वहाँ मनुष्यता और सभ्यता की आड़ में छिपे-भयानक डंकवालों को भी, बुरी तरह आकर्षित कर लिया है।

(२)

कालेज के प्रिन्सिपल श्री शारदारञ्जन बन्दोपाध्याय डामीसाइल्ड बंगाली हैं। आपके पूर्वज बहुत दिनों से बिहार में रहते आए हैं। ब्रह्मो होते हुए भी सनातन धर्म के आचार-विचार और व्रत-उत्सवों पर आपकी बड़ी श्रद्धा है। पुरातत्व और धार्मिक-विवेचना पर आपके लेख अंगरेजी, बंगला और हिन्दी पत्रिकाओं में प्रायः निकलते रहते हैं। आपकी पत्नी का देहान्त हो चुका है। लड़का बैरिष्ट्री करता है। पुत्री देवबाला उसी कालेज के एफ० ए० में पढ़ती है। बड़ी भली, भोली, और कुछ चंचल-सी, सुन्दरी बालिका है। प्रोफेसर रणधीर उसके हिन्दी-ट्यूटर हैं। फलस्वरूप हिन्दी की उसने साधारण-सी योग्यता प्राप्त कर ली है। कालेज की 'हिन्दी-सम्वर्द्धिनी समिति' की हस्तलिखित पत्रिका और उसकी बैठकों में, उसकी गद्य-पद्य-रचनाएँ बड़े चाव से पढ़ी, और सुनी जाती हैं। इसका सारा श्रेय रणधीर को है। प्रिन्सिपल साहब का रणधीर पर पूरा विश्वास है, इसलिये दोनों के साथ-साथ घूमने-फिरने का उनका ख़ास आदेश है। किन्तु सबेरे-शाम देवबाला को पढ़ाने के लिये रणधीर को उसके घर पर ही आना पड़ता है। इन दोनों गुरु-शिष्या के बीच किसी तरह का कोई विशेष स्नेह या आकर्षण नहीं है, दोनों एक-दूसरे के प्रति पारस्परिक कर्तव्य के ध्यान से ही मिलते-जुलते हैं। परन्तु, रणधीर के सामाजिक-क्षेत्र की यशाप्ति

में अहर्निश झुलसनेवाले कुछ ईर्ष्यालु साथियों, और देवबाला की कई सहपाठिनों तथा सहपाठियों के भाव इन दोनों के प्रति अच्छे नहीं हैं। कुछ प्रोफेसर भी, इस साधारण और नवयुवक प्रोफेसर के सौभाग्य पर मन-ही-मन ईर्ष्या करते।

(३)

प्रिन्सिपल-निवास के पश्चिम एक छोटा सा नज़रबाग़ है, उसी से ठीक सटा हुआ रणधीर का बंगला है। बंगले की पूरब ओरवाली खिड़की खोल देने से प्रिन्सिपल-निवास अच्छी तरह देखा जा सकता है; वरन ऊँचे स्वर में वार्तालाप भी हो सकता है। रणधीर का वहाँ आना-जाना उत्तर पथ से है, बाग़ से रास्ता नहीं है।

एक रात बड़े जोरों का अन्धड़ आया-तूफान का छोटा संस्करण। कितनी ही झोपड़ियाँ उजड़ गईं। वृक्षों की शाखाओं और पत्तों से वसुन्धरा की छाती भर गई। छोटे-छोटे पेड़-पौधे धराशायी हो गये। लोगों की वस्तुएँ तितर-बितिर हो गईं। रणधीर जब तड़के उठकर अपने पढ़ने-लिखने के कमरे में गया, तो दोनों ओर की खुली खिड़कियाँ देखकर ही उसे चिन्ता हुई। कमरे का सारा क़ागज़ी सामान नीचे अस्तव्यस्त पड़ा था। समाचारपत्र, चिट्ठियाँ, लेटरपेपर आदि की बुरी गत हो रही थी। सब से बढ़ कर दुख यह देखकर हुआ कि उसके मनोयोग का आधुनिक केन्द्र, अनेक हिस्सों में इधर-उधर फैला

हुआ है। वह था उसका बड़ी साधना से लिखा जानेवाला उपन्यास। जल्दी जल्दी मारे सामानों को ठीक कर वह उपन्यास के पन्ने मिलाने लगा। सब तो मिल गए, पर एक न मिला। बड़ी बेचैनी हुई। इसमें रणधीर ने मानव हृदय की सच्ची और जीती-जागती तस्वीर उतारी थी। उसकी सारी विद्वत्ता, विदग्धता सरसता और अभाव-आकांक्षा का निचोड़, काग़ज़ के उस क्षुद्र पृष्ठ पर लेखनी के रास्ते चू पड़ा था। व्याकुल होकर उसने दुबारा-तिबारा खोजा। आलमारी, टेबल, समाचारपत्रों के पृष्ठ तमाम छान डाले गये, पर वह हृदय-धन न मिला। बाग़ में भी बहुत दूर तक इधर-उधर देखा, कहीं कोई काग़ज़ का टुकड़ा दिखलाई नहीं पड़ा। निराश हो, सिर पर हाथों को रख, कुर्सी पर थप् से बैठ गया। सोचा 'ऊँह, दूसरा लिख लूँगा, इतनी बेकली की क्या ज़रूरत?' फिर ख्याल आता 'नहीं नहीं, वैसा नहीं लिखा जा सकता, होगा तो उससे अच्छा या बुरा। ओह, बड़ा मोह आता है!' सिर उठा कर घड़ी की ओर देखा। 'अरे, साढ़े नौ? अभी तक शौच-स्नानादि से भी छुट्टी नहीं पाई। देवबाला के प्रशन का समय भी निकल गया। कालेज जाने का समय हो रहा है...।'

एकाएक शरारत भरी मुस्कुराहट और जिज्ञासा भरी दृष्टि से देवबाला ने कमरे में प्रवेश किया। रणधीर ने उसका ऐसा भाव कभी न देखा था। कुछ समझा नहीं। सोचा, देरी की वजह चली

आई है। ..मगर आज तक तो कभी ऐसा न हुआ? इस क्षणिक मूक—दृश्य ने जैसे देवबाला के हृदय स्थित किसी शंका को गिज़ा पहुँचा दी हो; उसने तनिक सर हिला कर इसका प्रदर्शन किया। रणधीर को क्या मालूम? उसने कहा—"देवा! आज कुछ जरूरी कार्यवश न आ सका; शाम को दोनों समय का पूरा हो जाएगा। नहीं तो...देखता हूँ, तुम पुस्तक आदि भी न लाई यहीं कुछ पढ़ा देता। अच्छा जब तक कोई मासिक-पत्र देखो, मैं शीघ्र ही स्नान आदि से छुट्टी पा लूँ।" फिर वही मूक-मुस्कुराहट !!...जिज्ञासा भरी चितवन !!! रणधीर ने जैसे कुछ समझा नहीं, कहा, 'आओ बैठो न, खड़ी क्यों हो?

"नहीं, यों ही आई थी आपको देखने। अब जाती हूं, शाम को आइएगा न?"

'जरूर।'

(४)

शाम को रणधीर जब पढ़ाने गया, तो सदा से कुछ विपरीतता का आभास पाया। चाल में, व्यवहार में, अदब में, और पढ़ाई में कुछ-कुछ अनोखापन-सा अनुभव हुआ। समय पूरा हो जाने पर भी, देवबाला कुछ और पढ़ने की इच्छा जताने, और अनाव-श्यक बातें बनाने लगी। रणधीर ने आज की नवीनताओं पर कुछ ध्यान न दिया। समझा, बालिका ही तो है; अकारण चप-

लता करना उसका स्वभाव है। थोड़ी देर और पढ़ा कर चलने को तैयार हुआ। देवबाला ने कहा 'आप......आप शिक्षा-मार्ग का पथ दर्शाकर ही ठहर जाना चाहते हैं, आगे नहीं बढ़ते। मैं बढ़ना चाहती हूँ...।'

रणधीर ने सहज स्वभाव से कहा "बढ़ो न, जितना चाहो बढ़ो। मैं शक्ति भर तुम्हें बढ़ाने को तैयार हूँ।"

देवबाला ने, उनकी ओर न जाने किस भाव से थोड़ी देर तक देख कर कहा 'तो फिर...? अच्छा जाइए, सबेरे आइयेगा न ?'

"क्यों ? आऊँगा क्यों नहीं ?" कहता हुआ रणधीर डेरे चला।

इसी प्रकार रणधीर को नित्य कुछ-न-कुछ नवीनताओं का अनुभव होने लगा। एक दिन ऐसा विदित हुआ कि वह कुछ कहना चाहती है, किन्तु छिपा रही है; और ऐसा सांकेतिक भाव दर्शा रही है, जिससे रणधीर ही को कुछ कहना पड़े। वह अभी तक तो अनजान था, परन्तु अब जैसे समझदारी का तकाजा आरम्भ हुआ। सोचा, 'कहीं यह मुझसे प्रेम तो नहीं करने लगी है......!' सारे लक्षणों को मिलाकर देखा, ठीक यही बात है। "तो......तो, इसका आरम्भ कैसे हुआ ?......मैंने तो स्वप्न में भी ऐसी कल्पना नहीं की, हाव-भाव दर्शाना तो दूर की बात है। तो क्या स्वयं ही उसके मन में यह बात उठी ? मुझमें

ऐसा कोई आकर्षण भी तो नहीं है !" परिणाम यह हुआ कि अब वह भी संकोच करने लगा। इसकी निर्दोष आँखें जो निर्विकार भाव से अपना कर्तव्य पालन कर रही थीं, अब सामना करने में जी चुराने लगीं। इससे उधर का साहस बढ़ चला। अब अधिकांश समय रणधीर के साथ ही बिताना चाहती है, और रणधीर जैसे भागना चाहता है। पिता से आज्ञा लेकर अब वह रणधीर के बँगले पर ही पढ़ने के लिये आने-जाने लगी है। इस अत्यन्त बढ़ती हुई घनिष्ठता को देखकर रुकावट और ईर्ष्या का बाजार गर्म हो उठा। लोगों की मनोवृत्ति प्रतिकार के लिये उत्तेजित हो गई। सब ताक में रहने लगे।

(५)

एक दिन शाम को पढ़ाई समाप्त कर देवबाला अकारण ही इधर-उधर की बातें करके जैसे भागते हुए रणधीर के मन को बरबस रोक रही है। आज जैसे उसने कुछ ठान-सी ली है। एकाएक पूछा—'मास्टर साहब, प्रेम किसे कहते हैं ?'

रण०—(कुछ सोच कर) 'प्रेम तो किसी के प्रति लालसा-रहित आकर्षण को कहते हैं।'

देव०—'लालसारहित आकर्षण ?'

रण०—'हाँ'

देव०—'यह सम्भव है ?'

रण०—'सम्भव नहीं है तो पुस्तकों में वर्णन क्यों है? लोग करते क्यों हैं?'

देव०—[कुछ ठहर कर] 'आप यह सैद्धान्तिक रूप से कहते हैं या व्यावहारिक?'

रण० —'......दोनों'

देव०—[मुस्कुराने की चेष्टा करती हुई] 'दोनों किस प्रकार? आपने इसकी व्यावहारिकता का स्वयं अनुभव किया है?'

रण०—'मैंने नहीं किया है, करनेवाले अनुभवियों के विचार तो पढ़े हैं।—सुने हैं।'

देव०—'स्वयं नहीं किया है'

रण०—'नहीं'

देव०—'कभी चेष्टा की है?'

रण०—'नहीं, कभी नहीं......मगर देवा, आज तू ऐसे प्रश्न क्यों कर रही है? आज तो......'

रणधीर की ओर एकटक देखती हुई—एकाएक देवबाला ने उत्तेजित स्वर में कहा—

'क्यों प्रश्न कर रही हूँ?......निठुर!......' और फिर दोनों हाथों से सर थाम, फफक फफक कर रो उठी। बेचारे रणधीर को कुछ न सूझा कि क्या करें। इस अप्रत्याशित घटना से वह हक्का-बक्का सा हो, कुछ देर तक तो बैठा रहा; फिर आश्वासन देने के लिये डरते-डरते उसके सर पर हाथों को

फेरना आरम्भ किया। परन्तु देवा का रोना घटने के बदले बढ़ता ही गया। इतने में एक और घटना हो गई, जिसकी और भी आशा नहीं थी। एकाएक प्रिन्सिपल साहब कई प्रोफेसरों, विद्यार्थी-विद्यार्थिनों, और कुछ बाहरी मनुष्यों के साथ आ धमके; और अपशब्द कहते हुए एक ऐसी लात देवबाला को लगाई कि वह बेचारी औंधे मुँह जमीन पर गिर पड़ी—और बेहोश हो गई। रणधीर को ऐसे-ऐसे अपशब्द कहे गये, ऐसी लानत-मलामत की गई कि वह पागल की तरह चेष्टाएँ करता हुआ रो पड़ा। फिर एकाएक बाहर की ओर भागा। लोगों ने पकड़ लिया। इसके बाद प्रिन्सिपल साहब बेहोश देवबाला को विद्यार्थिनियों की सहायता से उठा कर निवास की ओर चले। साथ में पागल कैदी-रणधीर और अन्य लोग भी।

× × ×

थोड़ी देर की चेष्टाओं के बाद देवबाला की आँखें खुलीं। उसने चारों ओर देखा। रणधीर एक ओर दण्डित अपराधी की भाँति निश्चेष्ट बैठा था। प्रिन्सिपल साहब ने अत्यन्त कोमल स्वर में पूछा "देवा, तू इस नराधम के फन्दे में कैसे आई ?"

वह थोड़ी देर तक चुप रही, फिर रणधीर की ओर देख कर बोली "पिताजी, पहले इसीने मेरे पास प्रेम-पत्र भेजा, मैं अनजान इस पर रीझ बैठी......फिर-फिर इसने अनभिज्ञता जता कर मुझे अत्यन्त त्रास दिया, ओह !"

रणधीर—"ईश्वर तू साक्षी है। क्या मैं उस पत्र को देख सकता हूँ?"

देवबाला—"पिता, इस निठुर का साहस तो देखो! अस्वीकार करने का क्या ढंग निकाला है। अच्छा मैं दिखाती हूँ।" इतना कह कर पढ़ने-लिखने की टेबुल के दराज में से एक मोड़ा हुआ लिखित पत्र निकाल कर उसने रणधीर के मुँह पर फेंक दिया।

पत्र देखते ही रणधीर की चेष्टाएँ बदल गईं। वह एकाएक उठ खड़ा हुआ और आनन्दातिरेक से विह्वल होकर बोल उठा 'देवा, यह तुझे मिला क्योंकर?'

देव०—"जिस दिन, आप पढ़ाने नहीं आए उसी दिन सवेरे टेबुल पर पड़ा देखा, उठाकर पढ़ा। मैं आपके अक्षर पहचानती थी। समझ गई, आप ही ने लिखा है—और मेरे ही पास लिखा है। जब आप उस दिन नहीं आए, तो पूरा विश्वास हो गया कि आपको संकोच हो रहा होगा। तो क्या यह पत्र...?"

रणधीर—"पगली, यह प्रेम-पत्र तो अवश्य है, जिसे मेरे अप्रकाशित उपन्यास के प्रेमी ने अपनी प्रेमिका को लिखा है। देखती नहीं, कोने में नत्थी का चिन्ह! ओह, यह सारा अन्धेर उस दिन के अन्धड़ का है, उसी ने मेरे कमरे से उड़ा कर यहाँ पहुँचाया।"

अब तो असलियत समझते किसी को देर न लगी। प्रिन्सि-

पल साहब और अन्य लोगों को बड़ा पछतावा होने लगा। माली ने भी स्वीकार किया, कि जरूरी काग़ज समझ कर उसने ही टेबुल पर रख दिया था।

(६)

कई दिन बीत गये। बात आई-गई हो गई। लोग इस घटना को एक प्रकार भूल-से गये। किन्तु रणधीर भूलने की बजाय एक विचित्र मानसिक उलझन में फँस चला। कालेज में या और कहीं भी, देवबाला की ओर देखने में न जाने क्यों संकोच अनुभव करने लगा। उधर, देवा के स्वभाव में भी परिवर्तन। हर दम जैसे लज्जा में गड़ी सी रहती—चिंताशील। पहली सी चपलता, नटखटी, बच्चों की सी हँसी, न जाने कहाँ खो गई। घर पर कुछ उदास, कुछ सहमी-सी तो रहती ही है, कालेज में भी यही हाल है। वहाँ की साहित्य-कला-गोष्ठियों में बुलबुल ने चहकना छोड़ दिया है। जहाँ तक होता है, रणधीर से दूर ही रहने की चेष्टा करती—है आँखें चुराती है।

एक दिन प्रिंसिपल साहब का ध्यान एकाएक इस ओर आकर्षित हुआ। बुलाकर पूछा—

'क्यों देवू, तबीयत तो ठीक है न? अजीब सूरत बनाए रहती है—आजकल! बात क्या है?'

देव०—'नहीं पिताजी, कुछ ऐसी बात तो नहीं है। परीक्षा सर पर है न—'

प्रि०—'ओ, समझा। इसीसे, जैसे तू घर में रहती ही नहीं, ऐसा लगता है। वह हुल्लड़बाजी, धमाचौकड़ी सब बन्द है। (हँसकर) कभी-कभी कुछ शरारत कर लिया कर, इसके बिना घर सूना-सूना लगता है। अच्छा, रणधीर यहीं पढ़ाने आता है या तू ही उसके घर जाती है ?'

देव०—'जी······'

प्रि०—'क्यों ? चुप क्यों हो गई ?'

देव०—'मैं उनसे नहीं पढ़ती।'

प्रि०—'अरे ! यह क्यों ?'

देवा ने फिर चुप्पी साध ली।

प्रिंसिपल ने समझा, 'अपराध की लज्जा बच्ची को अभी तक खाए जा रही है' प्रकट में मुस्कुराकर बोले—'अरे तूने जान-बूझ कर थोड़े ही कुछ किया है ? भूल-भ्रम सभी से होते हैं। अच्छा, क्या वह भी नहीं आता ?' देवबाला बोली नहीं, केवल सिर हिलाकर 'नहीं' का संकेत किया।

प्रिंसिपल बोले—'उसके न आने की कौन सी बात थी ? गँवार कहीं का ! खैर, यहीं बुलाता हूँ उसे, माफी माँग लेना। आखिर तुम्हारा गुरु है न ! अरे ओ जीतू—जीतू······!'

जीतू बाग का माली है, घर के छोटे-मोटे फुटकर काम भी कर देता है। सुनते ही 'जी सरकार' कहता दौड़ा आया। प्रिंसिपल साहब ने आज्ञा दी—'जा झटपट रणधीर जी को बुला ला।'

जीतू जैसे ही जाने लगा कि देवा ने झट से रोक दिया।

'नहीं जीतू, मत जाना। मैं ही संध्या को उनके यहाँ मिल आऊँगी। अभी जरूरत ही क्या है?'

प्रिंसिपल साहब ने सोचा, जब कई दिनों से आपस में संकोच की दीवार नहीं ढही तो फिर इनमें से कोई भी स्वयं साहस नहीं करेगा। जीतू से बोले—

'नहीं रे, जा तू प्रोफेसर जी को बुला ला। कहना मैं बुला रहा हूँ।' जीतू के जाते ही लगे बेटी को समझाने। "सच्चे मन से अपराध के लिये पछतावा करने से जी का बोझ हलका हो जाता है। कितना नेक है बेचारा। इतना अपमान हुआ, किन्तु शान्त बना रहा। जा, कपड़े बदल कर अपने कमरे में आ, वह आता ही होगा।" देवा चुपचाप चली गई। प्रिंसिपल जैसे ही अपने रूम से बाहर निकले कि जीतू हाँफता हुआ आकर बोला 'हजूर, जैसे ही मैं पहुँचा, वह ताँगे पर सवार होकर स्टेशन की तरफ जा रहे थे। बिस्तर-बिस्तर भी साथ में है। कह रहे थे, घर जा रहा हूँ। यह चिट्ठी दी है।' प्रिंसिपल ने पढ़ कर देखा—क्षमा प्रार्थना के साथ इस्तीफा है, कालेज की प्रोफेसरी से। कुछ सोच कर जीतू से कहा 'दयाल सिंह को कह दे कार ले आवे - फौरन।'

कार आई, सवारी चढ़ाकर स्टेशन की ओर हवा हो गई। स्टेशन-कम्पाउन्ड में जैसे ही घुसी, सामने रणधीर ताँगे से उतर

रहा था। पास ही कार रुकवा कर प्रिंसिपल साहब उतरे। उन्हें देखते ही रणधीर सकपका गया। प्रणाम के लिये हाथ उठाकर भी, गुम-सुम खड़ा रहा—दूसरी तरफ़ देखता हुआ।

'कहाँ जा रहे हो ?'

'घर'

'क्यों ?'

चुप।

'चलो लौट चलो। गुरु-चेलिन आपस में समझौता कर लो। देवा माफ़ी चाहती है। देखो, भूल-भ्रम मनुष्य से होते ही हैं। माना कि तुम्हारा अपमान हुआ। मुझे भारी दुख है, क्योंकि तुम्हें भी मैं पुत्र जैसा ही समझता आया हूँ।' रणधीर घबरा कर बोला—

'नहीं नहीं सर, मुझे जाने दीजिये।'

प्रि०—'माना कि आत्म-अपमान का अभिमान स्वाभाविक है, पर उसका समाधान हो जाने पर ज़िद पकड़ लेना ठीक नहीं। और...'

रणधीर बीच ही में बात काट कर बोला—

'नहीं नहीं, सर। यह बात नहीं है।'

प्रि०—'तब लौट चलो। देवा को बड़ा पछतावा है। इसी सोच में वह हरदम उदास रहती है। तुमसे माफ़ी माँग लेगी तो उसका जी हलका हो जाएगा। देखते नहीं हो, आजकल

कैसी होती जा रही है ? चलो, बचपना रहने दो।'

अनिच्छापूर्वक यंत्रचालित पुतले की भाँति रणधीर अपने प्रिंसिपल साहब के साथ लौटा।

कार से उतरकर दोनों बैठके में आए। रणधीर को बैठने के लिये कह कर प्रिंसिपल देवा के कमरे की तरफ़ चले।

उसके द्वार के कुछ इधर ही जैसे पहुँचे, देवा को आवेश के साथ किसी से बातें करते सुना। जरा रुक गये। वह देवा की अभिन्न सखी राधा थी। शायद वार्तालाप का सिल-सिला देर से चल रहा था। जितना अंश सुना, इनके लिये काफ़ी था। देवा सखी से कह रही थी—'जैसे ही वह उपन्यास वाली चिट्ठी तूफ़ान में उड़कर मिली, बिना अधिक सोच-विचार किए मैं मन-ही-मन उन्हें आत्म-समर्पण कर बैठी। रहस्योद्घा-टन के समय तक, हरदम मैं इसी भाव में विभोर रही। और अब तो......।'

(७)

प्रिंसिपल साहब की समझ में अब सब कुछ आ गया। पहले दोनों का बर्ताव कुछ और ही समझ रहे थे। अब उनकी आँखें खुल गईं। फिर तो जो कुछ किया जा सकता था, उन्होंने उदारता-पूर्वक किया। कई दिनों तक खूब चहल-पहल रही। सारा काम सादगी और सुन्दरता से सम्पन्न हुआ।

स्वर्ग में सायरन

[इस नाट्य रूपक [जिसे इन दिनों 'एकांकी नाटक' कहा जाता है] का तर्ज—बयां एकदम नया नहीं है। फिर भी सुप्रसिद्ध (पूज्य श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर के द्वारा सम्पादित) संसार के होली-विशेषांक [६-३-४४] में प्रकाशित होने के बाद, इस ढंग की कई चीजें छपी हैं। पाठक तुलना करेंगे।

युद्धकाल में, शत्रु के बमबाजों से जनता को सावधान करने के लिये सायरन बजती है। स्वर्ग में इसका बजना आश्चर्यजनक ही नहीं, अस्वाभाविक भी है। किन्तु इसका तत्त्वविवेचन उतना ही सत्य-स्वाभाविक और मनोरंजक है। पाठक पढ़ना आरम्भ करते ही समझ लें—सायरन सुन रहे हैं। इसके बाद—]

प्रथम दृश्य

[स्थान—स्वर्गसभा, विष्णु, इन्द्र, बृहस्पति, कुबेर, वरुण, चित्रगुप्त यथास्थान बैठे हैं। उर्वशी नृत्य कर रही है। वाद्य-कला रंग पर है। एकाएक सायरन—खतरे का भोंपा बज उठता है। नृत्यवाद्य रुक जाते हैं। सब चकित—आशंका से एक-दूसरे को देखने लगते हैं। इसी समय यमराज शीघ्रतापूर्वक एक स्वर्गसेवक के साथ प्रवेश करते हैं। सायरन की ध्वनि पर ध्यान जाते ही, स्वर्ग-सेवक सहसा बोल उठता है]

स्वर्ग०—अरे! यहाँ भी सायरन? भागिये, भागिये आप लोग; और ऐसी जगह छिपिये जहाँ बम असर न कर सके।

इन्द्र—बम?

स्वर्ग०—हाँ महाराज, वह आपके वज्र का भी गुरु है। जल्दी भागिये, क्लियर हो जाने के बाद फिर बहस-विचार कीजियेगा।

कुबेर—क्लि-य-र हो जाने के बाद? यह क्लियर......

स्वर्ग०—बस रह गये न सीधे देवता! अरे महाराज, क्लियर का अर्थ है—भय दूर हो जाने की घण्टी। जिस प्रकार यह भय का भोंपा बज रहा है, उसी प्रकार भय दूर हो जाने का भी बजता है।

[सायरन की ध्वनि बन्द हो जाती है]

वरुण—यह तो बन्द हो गया।

स्वयं०—इससे क्या, जब तक क्लियर की घण्टी नहीं बजती तब तक भय बना रहता है।

विष्णु—धर्मराज जी, यह कौन है ?

यम—यह हैं......

चित्रगुप्त—प्रसिद्धपुर के स्वेच्छासेवक। इनकी आकस्मिक मृत्यु एक महाभयानक विस्फोटक आग्नेय-अस्त्र द्वारा होने-वाली थी।

यम—हाँ महाराज, सचमुच वह महाभयंकर-प्रलयंकर अस्त्र है। मैं तनिक सा बच गया। नहीं तो, जो सबके प्राण हरण करता है, उसके प्राण स्वयं हरण हो जाते महाराज।

स्वयं०—उसी अस्त्र का नाम बम है। अरे आप लोग छिपते क्यों नहीं ?

विष्णु—बम तो हमारे शंकर जी के नाम के पहले लगाकर बमशंकर के नाम से भक्तजन उनकी आराधना करते हैं !

स्वयं०—अजी भगवान् महाशय, शंकर जी में जो शक्ति थी, स्वतन्त्र राष्ट्रों के वैज्ञानिकों ने उसमें से 'बम' निकाल लिया, और केवल शंकर भक्तों के लिये छोड़ दिया है। खैर, अभी बहस छोड़िये और कहीं जल्द छिप जाइए। संसार बनता-बिगड़ता ही रहता है, मगर आप ही लोग अगर बमदुबला के शिकार हो गये, तो बस कहानी समाप्त। प्रसिद्धपुर में सायरन बजने पर आप ही जैसे बुजदिलों को समझा रहा था कि एकाएक शत्रु के

यमराज आये, और......। अरे महाराज जल्दी कीजिये। हम सांसारिकों पर आप लोग खूब हुक्म चलाते आ रहे हैं, इस समय कम-से-कम अपनी भलाई के विचार से ही सही, मेरा हुक्म मान जाइये।

इन्द्र—बृहस्पति जी, आप देवलोक की बुद्धि हैं। कहिये क्या उचित है?

बृ०—अभी तो इस सेवा-सिपाही की बात मान ही लेनी चाहिये; तब तक मैं विचार भी कर लूँगा कि क्या रहस्य है।

इन्द्र—अच्छा, तो अभी हमलोग कल्पवृक्ष के नीचे आश्रय लें। और जैसा कि (मुस्कुराकर) मनुष्य महाशय ने कहा है भय दूर होने की ध्वनि होते ही पुनः यहाँ एकत्र हों। मेरी राय है (विष्णु से) भगवन्, कि उस समय कुछ मर्त्यलोकवासी भी जो स्वर्गलोक में निवास कर रहे हैं, परामर्श में सम्मिलित किये जायँ।

विष्णु—ऐसे कई महामानव नर्क में भी हैं; इस असाधारण अधिवेशन में उन्हें भी बुला लिया जाय।

स्वर्ग०—अरे दुहाई है आप लोगों की, जल्दी कीजिये। सम्मेलन होता रहेगा।

[सब उठकर जाते हैं]

द्वितीय दृश्य

[स्थान—कल्पवृक्ष की छाँह। उपरोक्त सभी महाशय उपस्थित हैं। क्लियर की सायरन बजती है]

स्वयंसेवक—बस, खतरा टल गया। अब आप लोग निश्चिन्त होकर बहस-विवाद कर सकते हैं। चलिये सभा-भवन में।

इन्द्र—यमराजजी, जिनके नाम निश्चित हुए हैं, उन्हें सूचना दे दीजिये, दो घंटे बाद सभा-भवन में आ जायँ। तब तक हम लोग विश्राम कर लें।

यम—चित्रगुप्तजी, (स्वयंसेवक की ओर संकेत करके) इन्हें कौन सा स्थान दिया जाय?

चित्र०—कर्मानुसार तो नर्क मिलना चाहिये।

विष्णु—परन्तु, इनकी मृत्यु परोपकार में हुई है, अतएव इन्हें स्वर्ग मिले।

इन्द्र—यमराजजी, इनके लिए स्वर्ग में ही व्यवस्था कीजिये।

स्वयं०—मगर महाराज, नर्क में मेरे बहुत से साथी मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।

विष्णु—(मुस्कुराकर) उन्हें कह दिया जायगा कि अगले जन्म में आप ही की भाँति मृत्यु प्राप्त कर स्वर्ग में आपसे साक्षात् करें।

[सब हँसते हुए जाते हैं]

तृतीय दृश्य

[स्थान—वही, तथाकथित सम्मेलन में उपरोक्त देवताओं के अतिरिक्त कुछ अन्य व्यक्ति उपस्थित हैं।]

इन्द्र—बृहस्पतिजी, अपने विचार प्रगट कीजिये।

बृह०—महानुभावो, सायरन-भय का भोंपा—इन दिनों मर्त्य-लोक में कहीं न कहीं नित्य बज रहा है। क्योंकि सारा विश्व इस नाशकारी युद्ध से ग्रस्त है। एक पक्ष दूसरे पक्ष पर विमानों द्वारा महाघातक आग्नेय—जिसे बम कहते हैं, बरसाता है। सायरन उन्हीं आक्रमणकारी विमानों के आने की चेतावनी है।

वरुण—किन्तु हमारे देव-लोक को तो ऐसे आक्रमणों का भय नहीं। न हमारा कोई शत्रु है, और न हमारी भौगोलिक स्थिति ही ऐसी है। तो भी आज की यह भयंकर शंख ध्वनि—

बृह०—प्रतिध्वनि है विश्व के सायरन की। परन्तु वास्तव में यह देवलोक के लिए सायरन ही है!

कुबेर—अर्थात् हमलोगों के लिए भी भय का कारण है?

बृह०—हाँ, निश्चय!

वरुण—किस प्रकार?

बृह०—यदि मर्त्य-लोक न रहा, विश्वविध्वंस हो गया, तो लोक-परलोक की क्या उपयोगिता? यह लोक तो एक प्रकार मर्त्यलोक-वासियों का उपनिवेश है। हम कुछ कर्मचारियों को छोड़कर, शेष सभी स्वर्ग-निवासी विश्व-प्रवासी ही तो हैं।

यम—किन्तु पहले भी तो कई बार प्रलय हो चुके हैं, जिनसे विश्व का नाश होता रहा है।

बृह०—वे ईश्वरेच्छा-प्रेरित प्राकृतिक प्रलय थे। उनमें स्वर्ग, मर्त्य और पाताल की समाप्ति हो गयी थी। किन्तु आजकल तो

अप्राकृतिक प्रलय हो रहा है। यह मनुष्यों की—जातियों की महत्त्वाकांक्षाओं का संघर्ष है।

स्वयं०—तब तो इसमें जो जूझते या सहायता करते होंगे, उन्हें नर्क वास होगा ?

इन्द्र—नहीं, जो स्वदेश की भलाई समझ कर अपने शासन-सञ्चालक की आज्ञा से सहयोग देते होंगे, उन्हें तो स्वर्ग प्राप्त होगा।

स्वयं०—अच्छा, अभी-अभी जो भारत, विशेषकर बङ्गाल में भूख से मरे हैं या मर रहे हैं उनको ?

इन्द्र—माँ की गोद की तरह उन्हें स्वर्ग में सबसे उत्तम स्थान प्राप्त होगा।

स्वयं०—और जो कर्मचारी या व्यापारी इस मृत्यु-महोत्सव के दायी हैं ?

इन्द्र—अकारण मृत्यु का दायित्व जिन पर है, उनके लिये नर्क का विधान सर्वविदित है।

स्वयं०—मगर उनमें से अनेक भूखों के लिए दान अथवा इन्तज़ाम कर रहे हैं ?

इन्द्र—वे अपने महापाप का लघु-प्रायश्चित्त कर रहे हैं। हाँ, जो निःस्वार्थ-सहायता-कार्य में संलग्न हैं, यदि वे महापापी भी होंगे तो उन्हें स्वर्ग पाने का अधिकार है।

विष्णु—(स्वयंसेवक से) और कुछ आपको पूछना है।

स्वयं०—जी...नहीं।

विष्णु—बृहस्पतिजी, अब आप अपना वक्तव्य पूर्ण कीजिये।

बृ०—मैं पूर्ण कर चुका। केवल निवेदन करना है कि आज जिस प्रकार सारा विश्व विविध वेदनाओं से व्यथित होकर तिल-तिल नाश को प्राप्त हो रहा है, उसकी प्रतिक्रिया देवलोक में भी हो सकती है इसी की चेतावनी स्वरूप यहाँ भी सायरन बजा है। अतएव पूर्ण विचारों के साथ इसके निवारण की चेष्टा करनी चाहिये।

विष्णु—आप सज्जनों को गुरु बृहस्पति ने सारी बातों को भलीभाँति समझा दिया है। इस विषय पर अब अपने-अपने विचार प्रगट कीजिये। सर्वप्रथम महाराजाधिराज विक्रमादित्य वक्तव्य दें।

विक्रमादित्य—मैं संक्षेप में ही निवेदन करूँगा। भिन्न-भिन्न संस्कृतियों, भाषाओं, जातियों तथा ऋतुओं के रहते हुए भी भौगोलिक-सीमा-शृंखला के कारण विश्व-विख्यात भारतवर्ष में एकदेशीयता—राष्ट्रीय संस्कृति अवश्य है। इसी आदर्श की रक्षा वैदिक-काल से होती चली आ रही है। मेरे पूर्व के ऐतिहासिक महापुरुषों ने भी इसी ध्येय की रक्षा में ख्याति प्राप्त की। परन्तु जब-जब विदेशियों द्वारा राष्ट्रीय एकता छिन्न-भिन्न हुई, भारत की सारी सुव्यवस्था बिखर गयी। प्रान्तीयता, जातीयता, साम्प्रदायिकता आदि—कलह से गृह-युद्ध मचते रहे। प्रायः इसके दो

कारण प्रधान होते हैं। एक तो सीमाप्रान्तों के हद पर और यह लूट-मार मचाने की विदेशियों की कुचेष्टा और दूसरा आयात-निर्यात होनेवाले पदार्थों के कर-सम्बन्धी अनुचित लाभ उठाने की चेष्टा। हमारे जल, स्थल तथा पहाड़ी मार्गों पर सदैव उनके द्वारा आतंक उपस्थित होते रहते थे। इसी के निवारण के लिये उन विदेशी शासकों से ही नहीं, उनके द्वारा बहकाये गये अपने प्रान्तीय शासकों से भी हमें युद्ध करना पड़ा, और लुटेरे दूर खदेड़े जा सके। जिन्होंने सन्धि चाही, उन्हें मित्र बनाया। जो बसना चाहते थे, उन्हें सादर स्थान दिया गया। ऐसा लगता है कि मेरे शासन के समय में जो युद्ध के कारण थे, आज के विश्व-युद्ध का कारण भी प्रायः वैसा ही कुछ है। और जब तक राष्ट्रों में यह लुटेरी प्रवृत्तियाँ रहेंगी, तब तक संसार में शान्ति न होगी।

विष्णु—शाहंशाह अकबर कुछ कहें।

अकबर—मैं अपने बुजुर्ग और हिन्दुस्तानी क़ौमियत के सबसे बड़े तवारिखी रहनुमा महाराजा विक्रमादित्यजी की बातों की ताईद करता हूँ। हिन्दुस्तान की हुकूमत में मेरा भी उसूल यही रहा। गो कि मेरे हम-मजहब सलाहकारों ने मेरे दिल में बार-बार यही ख्याल पैदा करने की कोशिश की कि हम मुसलमान गैर-मजहब और गैर मुल्क के हैं। हमें उन्हीं की बेहतरी की खातिर हिन्दुस्तान पर हुकूमत करनी है। मगर मैंने मादरे-हिन्द को ही अपना वतन समझकर उसकी क़ौमियत को मजबूत करने के लिये

भरसक कुछ किया। लड़ाइयाँ लड़ीं, सुलह की, दीन-ए-इलाही मजहब चलाया, हिन्दू-मुस्लिम शादी को तरजीह दी। मगर अफसोस, मेरे बाद यह कड़ी ढीली होती-होती एकदम टूट गयी, और देश गुलाम हो गया। यह एक अजीब राज है कि यह दुनियाई-बहिश्त जिस किसी गैर मुल्कवालों के क़ब्जे में रहा, दूसरे गैर-मुल्कवालों ने भी उसे चैन न लेने दिया। (हरे-हरे की आवाज़) हिन्दू—बादशाह के पहले की तवारीख मेरे सामने नहीं है कि शक, हूण, और दूसरे विदेशियों ने—हिन्दुस्तान पर क़ब्जा जमाने के लिये कितनी खून की नदियाँ बहायीं। अपने हम-मजहबों के बारे में इतना जानता हूँ कि पठान जब यहाँ बादशाह हुए, तो उनके मुख्तलिफ फिरक़ों में भी मार-काट मचती रही। मुगलों के जीतने पर उनमें भी खूँरेजियाँ मचीं। भाई भाई का, बेटा बाप का दुश्मन बन गया। इसके बाद पोर्तुगीज, फ्रांसीसी, डच क़िस्मत आज़माते रहे। आज अँग्रेजों का सितारा बुलन्दी पर है, कल की बात खुदा जाने। कौन कह सकता है कि इन दिनों जो दुनिया में क़यामत बरपा किया जा रहा है हिन्दुस्तान की गुलामी भी उसकी एक वजह नहीं है ?

विष्णु—अब गोस्वामी तुलसीदासजी कुछ निवेदन करें।

तुलसी—(शान्त भाव से उठकर)

जे अधर्म बस युद्ध कराहीं।
नरकहुँ महँ तिनि ठौर न पाहीं॥

जे परजा पीड़क अभिमानी।
करत अनेक स्वार्थ मनमानी॥
रावण सरिस वीर विज्ञानी।
ताकी सुनियत करुण कहानी॥
तिन सासक गति कबहुँ न पाई।
जनम जनम के पुन्य नसाई॥

विष्णु—कार्लमार्क्स साहब!

यम—महाराज, उन्होंने और लेनिनजी ने कहा कि पूँजी-पतियों के खुदा और देवताओं के दरबार में हम न आयेंगे। साथ ही यह भी कि आजकल की दुनियावी लड़ाई पूँजीपतियों की ही चलायी हुई है और धर्म भगवान-स्वर्ग का ढकोसला उसमें मदद करता है। इसलिये अच्छा है कि यहाँ भी 'बम्बार्ड' हो, जिससे स्वर्ग-नर्क का नाटक ही खत्म हो जाये।

विष्णु—(मुस्कराकर) हूँ! अच्छा—राष्ट्रपति विलसन महोदय,—

विलसन—मेन पाइन्ट्स आन वार पर किंग विक्रमा और अकबर द ग्रेटने शॉर्ट में कह दिया है। मैं सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूँ कि लास्ट ग्रेट वार खत्म कराने में मेरा बड़ा हाथ रहा। लेकिन अफसोस है कि मेरी शर्तों पर जिस लीग-आव-नेशन्स को कायम किया गया, इम्पिरियलिज्म के हथकंडों ने उसे बेकार कर दिया; दुनिया में फिर वही रवैया आ धमका। और फिर यह नया वार छिड़ा है, अब भी मेरा दावा है कि मेरी शर्तों के

डिफेक्ट दूर करके उनके जरिये लड़ाई की आग हमेशा के लिए बुझायी जा सकती है।

विष्णु—देवी एनीबेसेन्ट

एनीबेसेन्ट—मैं अपने जातिभाइयों से यह कहना चाहती हूँ कि अधिक नहीं तो कम से कम 'होमरूल' भी इस समय भारतीयों को दे दें तो वे निश्चय युद्ध में विजयी हो सकते हैं। दूसरी बात यह कहना चाहती हूँ कि पहचान में भूल भले ही हो, किन्तु 'पूर्व के तारे' का प्रगट होना ध्रुव है।

विष्णु—कबीरदासजी कुछ कहें!

कबीर—बन्दे, तू ही बैरी अपना।
लोभ, स्वार्थ मन कपट भरा है,
ऊपर जग हित रटना॥
धर्म, सचाई की दे दुहाई,
पर को—निज को ठगना॥
एक पिता के सब जाये हैं,
फिर कैसे नहिं पटना।
कहै कबीर सुनो रे भाई,
आपुसहि में निबटना।
बन्दे तूही बैरी अपना॥

विष्णु—लोकमान्य तिलक जी,

तिलक—अत्यन्त क्लेश की बात है कि सदियों की पराधीनता

ने भारत को इस प्रकार जकड़ रखा है कि जीवन पर, जीवनोपयोगी अन्न और वस्त्र पर भी आज उसका अधिकार नहीं है। इसीलिये मैंने 'स्वराज भारतीयों का जन्म सिद्ध अधिकार है' आन्दोलन चलाया था। क्योंकि मेरा विश्वास है कि स्वतन्त्र भारत ही संसार में स्थायी शान्ति स्थापित कर सकता है। मैंने उस समय अनुभव किया कि संसार के बलवान राष्ट्र भाँति-भाँति के हथकण्डों से दुर्बल राष्ट्रों का दोहन करके मोटे होते जा रहे हैं और चीन, भारत, अफ्रिका, तथा एशिया के अनेक द्वीपों एवम् भू खण्डों को अपने साम्राज्य-विस्तार तथा व्यवसाय की मंडी बनाकर, आपस में एक-दूसरे से बढ़ जाने की प्रतिद्वन्द्विता अनिवार्य कर रहे हैं। पिछला और वर्तमान विश्वयुद्ध उसीका परिणाम है—

सनयातसेन—आपने मेरे हृदय की बात कह दी, मेरा देश इन चालबाजियों का काफी शिकार रहा।

जगलूल पाशा—और मेरा मुल्क भी।

विष्णु—तिलकजी के बाद आप लोग ही बोलेंगे।

जगलूल—तिलक भाई की तकरीर ही काफी है।

सनयात—अब हम लोगों को और कुछ कहने की जरूरत नहीं।

विष्णु—(तिलकजी से) आगे कहिये।

तिलक—पिछला विश्वयुद्ध जिस प्रकार छिड़ा और जैसे उसका अन्त हुआ, उसीमें वर्तमान विश्वयुद्ध का बीज भी था। और इसका अन्त भी यदि इसी प्रकार हुआ तो तीसरे विश्वयुद्ध

की भूमिका तैयार होगी। जब तक बलहीन देशों को दबाकर बलवान बनने की होड़ राष्ट्रों में होती रहेगी, विश्वयुद्ध का सिल-सिला इसी प्रकार रहेगा।

स्वयं—महाराज, शान्ति का कुछ व्यावहारिक उपाय भी तो बताइये।

तिलक—जैसा कि मैंने कहा है, भारत शीघ्र स्वतंत्र हो, और लड़ाके राष्ट्र उस पर मध्यस्थता का भार सौंप दें, तो विश्वशान्ति की समस्या स्थायी रूप से हल हो जायगी।

विष्णु—कविराज भूषण कुछ छंद पढ़ें।

भूषण—(मूंछोंपर ताव देकर)

माच्यो रुद्रमंडल भूमंडल में चहूँ ओर,
मेदिनी दरकि उठी, नभ घहरानो है।
मथ्यो जात सिंधु पुनि, पर्वत प्रपीड़ित है,
नदी, नद, वन, वीथी गने को ठिकानो है।
'भूषण' भनत भवसिन्धु ही भभकि उठ्यो,
जीव, जन्तु, जड़, चर, अचर नसानो है।
वोही ज्वाल मृत्युलोक-महाकाल आज इते,
सरग में सायरन बन धिधियानो है।

विष्णु—(इन्द्र से) देवराजजी, अब आप भी कुछ कहिये।

इन्द्र—मैं क्या कहूँ ? हम देवतागण तो आपके आज्ञाकारी हैं। किन्तु फिर भी इच्छा होती है कि देव-सेना लेकर विश्वयुद्ध में कूद पड़ूँ।

विष्णु—किसकी सहायता के लिए ?

इन्द्र—जो धर्मपक्ष पर है।

विष्णु—(मुस्कुराकर) परन्तु, सभी युद्ध-लिप्त-राष्ट्र धर्म, ईश्वर, मानवता और विश्व-सुरक्षा की दुहाई दे रहे हैं। जो नास्तिक थे, वह भी अब आस्तिक बन गये हैं। तब हम किसे धर्म-पक्ष पर और किसे अधर्म पक्ष पर समझें ?

इन्द्र—हाँ, यह तो...यह तो ठीक है; परन्तु...परन्तु...

स्वयं०—परन्तु-वरन्तु कुछ नहीं महाराज, यही बदला चुकाने का अवसर है। जब-जब जरूरत हुई है, भारत ने देवलोक की सहायता की है। इस समय आप उसकी सहायता अवश्यमेव कीजिये।

विष्णु—भारत में अनेक व्यक्ति इच्छा या अनिच्छा से युद्ध में सम्मिलित हैं, और अनेक युद्ध से अलग हैं। तब हम किसकी सहायता करें ?

स्वयं०—(कुछ सोचकर) वेय, जो युद्ध नहीं चाहते।

विष्णु—जिनका सिद्धान्त ही युद्ध से अलग रहने का है, युद्ध द्वारा उनकी सहायता करना क्या उचित होगा ?

स्वयं०—भारतवासी सिद्धान्त की रक्षा से उद्धार ज्यादा पसन्द करेंगे। युद्ध से, अवतार लेकर, सुदर्शन चक्र चलाकर, चाहे जिस प्रकार हो, कृपा कर आप भारत का उद्धार करें।

विष्णु केवल भारत का ?

स्वयं०—हाँ, केवल भारत का; नहीं-नहीं विश्व का भी।... नहीं-नहीं भगवन्, केवल भारत का ही उद्धार कीजिये।

विष्णु—(हँसकर) होगा, भारत का उद्धार होगा; परन्तु पूर्ण प्रायश्चित्त के बाद। अनार्यों को घृणापात्र और दास बनाकर, उन-पर मनमानी करके आज यह स्वयं अनार्य और दास बनकर प्राय-श्चित्त पूर्ण कर रहा है। चिन्ता न कीजिये, थोड़ा ही विलम्ब है। गुरुदेव बृहस्पतिजी ने कहा है कि यह प्राकृतिक युद्ध ईश्वरेच्छा-प्रेरित नहीं है। परन्तु, ईश्वर के अतिरिक्त यह कौन ठीक ठीक बता सकता है ? जो हुआ होगा, उसी का परिणाम अब हो रहा है। और जो रहा है, उसीमें होनेवाला भी होता जा रहा है। यह निश्चित नियम अनादिकाल से चला आ रहा है और अनादिकाल तक चलता रहेगा। ईश्वर की इच्छा या प्रेरणा उससे अलग नहीं है। विश्व-वेदना की कराह जो सायरन बनकर आज यहाँ सुनाई दी है, पहले भी जब-जब विश्व की ऐसी ही दुर्दशा हुई है,—दूसरे रूपों में अपनी करुण पुकार सुना चुकी है। और उसका निवारण ईश्वर के उसी अटल नियम के अनुसार हुआ है। आज भी विश्व उसी प्रकार शान्ति की प्रसव-वेदना सहन कर रहा है। शीघ्र ही सारी चिन्ताएँ दूर होंगी।

रूपक

पब्लिसिटी !

[आजकल आत्म-विज्ञापन-पब्लिसीटी का युग है। कुछ युवक बेचारे इसी सकामक-प्रेरणा से हरिजनों के पास जाते हैं। उनकी बातें सुनिये और गुनिये। 'समाज सेवक' कलकत्ता, में प्रकाशित।]

[हरिजनों की एक बस्ती। ५–७ टूटे-फूटे झोंपड़े। ८–१० हरिजन ताड़ी पीते नाच-गा रहे हैं।]

मोरे चोलऊ हो, जगवा में रहबऽदिनवाँ चार।
खालऽपीलऽमौज उड़ाल ऽ, करल ऽहँस व्योहार,
का जानी कब नेवता आई, जइब ऽ टाँग पसार।
धोबी हमरा कपड़ा न धोए, नाउ न काटे बार,
रोग-बीमारी में कोउ न देखे, अइसन विपत के मार। मोरे०
सड़ल-गलल जूठा हम खाई, रहे के घर ना द्वार;
गन्दा-गड़हा के पानी पिअइले, हे ई नरकवा के मार। मोरे०
छाया पड़े, भिनसर मुँह देखे, दें सब गाली हजार;
कुत्ता-बिलाई से नीचा गिनाइले, येही है गतिया हमार। मोरे०
भीतर अन्न, न तन पर बस्तर, ना कोई देखन हार;
यही सब दुख से ताड़ी पिअइले, ना हम चोर-लबार। मोरे०

[४–५ सुधारक नवयुवक आते हैं। एक के हाथ में कैमरा है। हरिजन चुप हो जाते हैं। दोनों दलों में बातें होती हैं—]

पहला नव०—भाइयो, नशा पैसे बरबाद करता है और अक़ल भी।

पहला हरि०—बाबू, नशा तो बड़े लोग करते हैं। हम लोग तो दुख भुलाने के लिये घिनौने जीवन से कुछ देर मन हटाने के लिये दवा पीते हैं। और न हमारे पास पैसे हैं—न अक़ल ही, जो बरबाद होंगे।

[नवयुवक एक-दूसरे को देखते हैं]

२ रा नव०—नशा के साथ अगर गंदगी भी छोड़ दो, तो समाज तुम्हें अपनाने लगेगा।

२ रा हरि०—गन्दगी ! (दुख की मुस्कुराहट से) मालिक, गन्दगी उसे अखरती है, जो पवित्र हो। मैला वही होता है, जो साफ-सुथरा हो। यहाँ तो ख़ुद गन्दे हैं-मैले हैं। गन्दगी हम से अलग ही कहाँ है !

(नवयुवक आपस में संकेत करते हैं।)

३ रा नव०—भाई, तुम लोगों के लिये उस गाँव में पाठशाला, अस्पताल, मन्दिर, कुँआ वगैरह खोल दिये गये हैं।

४ था नव०—अपने बच्चों को पढ़ने के लिये भेजो, और ख़ुद भी आओ। कोई बीमार हो, उसकी दवा कराओ और, मन्दिर में—

१ ला हरि०—महाराज, अगर हम लोग वहाँ जायँगे तो आपका सब इन्तज़ाम छुला जायगा। ऊँची जातिवाला वहाँ न आएगा—

२ रा हरि०—और हम लोगों की पढ़ाई या सिखावन तो हम-लोगों का काम है—बड़े लोगों के समाज की गन्दगी साफ़ करना। इससे किसी तरह एक शाम आधा पेट चलता है। पढ़ने लगे, तो वह भी बन्द हो जाय।

३ रा हरि०—बाबू, यह हम लोगों के अगले जन्म का पाप है कि हम जानवर न हुए। मानुस-तन पा के हमारी दशा चमगादड़

से भी गई-बीती है। न इधर के, न उधर के। आदमी में शरण नहीं, जानवर में गिनती नहीं।

(युवक आपस में देखते हैं)

१ ला नव०—कम से कम नहा भी लिया करो, तो मन्दिर में तुम लोगों का प्रवेश—

१ ला हरि०—इन चीथड़ों के सिवा है क्या, जो नहाकर पहनेंगे?

२ रा हरि०—अच्छा बाबू, यह तो कहिये, कि जो लोग नहा-धोकर—पवित्र बनकर, मन्दिर में भगवान का दर्शन करते हैं, वह फिर पाप नहीं करते होंगे?

२ रा नव०—नहीं……करेंगे कैसे? करना ही नहीं चाहिये।

३ रा हरि०—'करेंगे कैसे?' 'करना ही नहीं चाहिए'—यह तो हम लोग भी जानते हैं। यह कहिये—करते हैं या नहीं?

(नवयुवक आपस में एक-दूसरे का मुँह देखते हैं)

१ ला हरिजन—खैर, सुनिये। अगर भगवान कहीं हैं, तो जिस हालत में उन्होंने हम लोगों को रख छोड़ा है, उसी में दर्शन देंगे।

४ था हरिजन—अरे छोड़ो इन सब झंझटों को, हमारा भगवान तो (ताड़ी भरे चुक्कड़ हाथ में उठाकर) यह है।

१ ला नव०—अच्छा, इस समय तो हम लोग जाते हैं फिर कभी आयेंगे। अब जरा तुम लोग सीधे—इस तरह—खड़े हो जाओ। फोटू ली जायगी।

पहला हरि०—ओ···अखबार में छपाने के लिये।

दूसरा हरि०—कि नेता बाबू लोग हरिजनों की सेवा करने गये थे।

तीसरा हरि०—फिर तो आप लोगों की खूब ही तारीफ़ होगी।

चौथा हरि०—अच्छा, तो ले ही लीजिए फोटो, क्योंकि इतना भी न होने से आप लोग दुखी होंगे। लेकिन कुछ हम लोगों की खातिरदारी भी कबूल कीजिये। ताड़ का मीठा रस बड़ा ही फ़ायदेमन्द होता है। सुना है बड़े-बड़े नेताओं के चेले भी पीने लगे हैं।

१ ला नं०—हाँ हाँ, नीरा, मगर·····

२ रा हरि०—बहुत सफाई से लाता हूँ; घबराइए नहीं। जिस बर्तन में रस चू रहा है, उसमें हम लोग मुंह नहीं लगाते। वह देखिये; उतारा जा रहा है।

[एक हरिजन रस लाता है। युवक असमंजस में पड़े से दिखायी देते हैं।]

पहला हरि०—क्यों बाबू, इसी हौसले पर हम लोगों का उद्धार करने चले हैं आप ?

[जोश में आकर पहला नवयुवक जैसे ही पीने लगता है कि युवकों के ४,५ गार्जियन झट से आते हैं और 'पापी' 'अछूत' 'भ्रष्ट' आदि कुवाक्य कहते हुए युवकों को मारते-पीटते ले जाते हैं। हरिजन हँसते हुए फिर गाने-बजाने लगते हैं।]

—:※:—

रूपक

ब्लैक-मार्केट

यह वर्तमान समय की जीती-जागती-बोलती तसवीर है। जन-आन्दोलन और इस (ब्लैक मार्केट) से क्या सम्बन्ध है, रहस्य-हास्य के व्याज से गुदगुदाकर बताया गया है। और भी इसमें बहुत-कुछ है।

[१९-५० का पतझड़। ११ बजे रात। इस्टसंघपुर का एक बढ़िया बागीचा। फाटक भीतर से बन्द, ४ बन्दूकधारी सन्तरी चौकसी में चक्कर काटते हुए। बीच बंगले के भी सभी द्वार-खिड़की बन्द। उसके अन्दर अंग्रेजी ढंग पर सजे कमरे में बिजली का प्रकाश, एक फैन भी हौले-हौले चलता हुआ। संगमरमर के अंडेनुमा एक बड़े टेबुल की किनारियों से लगी कुर्सियों पर भिन्न-भिन्न वेष-भूषावाले १२ व्यक्ति बैठे हुए। शायद बातचीत का सिलसिला देर से चालू है।]

कोकाडाश्लसन—मुझे खुशी है कि इतनी देर की बातचीत के बाद इस नतीजे पर पहुँच गये कि हम सब का एक ही कामन-एनिमी-शत्रु है, कांग्रेस, और चुनाव में, चाहे जैसे भी हो उसे डिफीट देना है। अब हमें इसके उपाय पर विचार करना चाहिये।

कामरेड पिलपिल—उपाय तो शुरू कर दिया गया है मिस्टर! कम्युनिज्म का भयंकर बवंडर आज सारे हिन्द-यूनियन को झकझोर रहा है। कुछ ही घण्टे में उसका एक नन्हा शिगूफ़ा फुटकर रंग लानेवाला है।

स्वामी घुरघुरा शास्त्री—परन्तु धर्म, जाति, संस्कृति और साम्प्रदायिक—उभाड़ के कारण ही आज जनसाधारण में कांग्रेस-सरकार के प्रति विद्रोह विस्तार है। उसका सबसे विराट बल गांधी को भी समाप्त कर दिया गया। अतः इसी कार्यपद्धति को व्यापक बनाना अत्यावश्यक है।

मुन्शी हररूपलाल—देखिये साहब, मैं अरसे से कांग्रेसी रहा हूँ। त्याग की रेकर्ड ही तोड़ दी मैंने। अनेक बार पुलिस के लाठी-धक्के सहे; कई बार हाजत जाकर भी लौट आया। एक दफा जेल भी गया, मगर कम्बख्त घरवालों के माफी माँग लेने के कारण...

कामरेड पिलपिल—अपना बयान छोड़िए, सब्जेक्ट पर आइए।

मुन्शी०—देखिए, बीच में ही न टोकिए।

कोको०—येस येस, गो ऑन, गो ऑन।

मुन्शी०—हाँ तो देखिए, मैं अभी तक खद्दर पहनता हूँ।

कामरेड पि०—नकली—मिल के सूत का।

मुन्शी०—देखिए फिर आपने डिस्टर्ब किया (बिगड़कर) क्या समझा है आपने मुझे ?

कोको०—दिस इज़ वेरी बैड मिस्टर पिलपिल, इन्हें बात पूरी करने दीजिये।

मुन्शी०—हाँ, तो अंत में कांग्रेसी-लीडरों से तंग आकर अब मैं सोशलिस्ट हो रहा हूँ। कम्युनिस्टों का साथ भी देता हूँ। हिन्दू होने के नाते हिन्दूराज्य-स्थापना का समर्थक हूँ ही। राष्ट्रीय सेवक संघ की भी काफी मदद की है मैंने। किसान सभा और मजदूर मण्डल......

कोको०—शौर्ट में मिस्टर, मुख्तसर में कहिए।

पुँरी०—थोड़ा विस्तार से कहने का मतलब यह है कि मेरा अनुभव देश की भलाई के बारे में—हर दृष्टिकोण से विराट् व्यापक है। इसलिये दावे के साथ कहता हूँ कि इस समय जनता में जो क्षोभ फैल रहा है, उसका मूल कारण है—सोशलिस्ट नेताओं द्वारा की गई कांग्रेस की कटु आलोचना। क्योंकि यह भी कांग्रेस नेता ही समझे जाते हैं और इनका प्रभाव......।

वपन्न्यानंद सरस्वती—(चिढ़कर) यह आप लोगों की कोरी वाचाल है। क्या कम्युनिस्ट, हिन्दू साम्प्रदायिक, और सोशलिस्ट के अलावा मुस्लिमलीग का रोपा हुआ विषवृक्ष, फारवर्ड ब्लाक, विद्यार्थी संघ, किसान सभा, मजदूर यूनियन, अकाली सिख सभा, आदिवासियों— जमींदारों—जागीरदारों का आन्दोलन भारतव्यापी कई विशेष प्रान्तनिवासियों की संस्कार में मिली हुई प्रान्तीयता, संस्कृतनिष्ठ हिन्दी-हिमायतीय— इन सबका कुछ भी प्रभाव इस व्यापक जन-क्षोभ पर नहीं है? मेरा ख्याल है—और सही है कि सभी आन्दोलक दलों ने जाने या अजाने, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष, द्वेष या सुधार भाव से, कांग्रेस-सरकार की नींव पर ही चोटें पहुँचाई हैं; और अब भी पहुँचा रहे हैं। जनता भी देखती है कि सभी दल विद्रोही हो रहे हैं तो उसका भी कान-पगहा तुड़ाना स्वाभाविक ही है। मेरा सम्बन्ध अधिकतर किसान-मजदूर संस्थाओं से ही रहा है। और सच पूछिए तो—वास्तविक जनता का

प्रतिनिधित्व यही संस्थाएँ करती हैं। अतएव इन्हीं का बल बढ़ाने का निश्चय आज किया जाय।

मिस्टर दस्तूरचंद—लेकिन बहुत से सरकारी नौकरों को बाद क्यों दे रहे हैं सरस्वती जी—ओ आइएमसोरी स्वामी जी? यही तो असली कल-पुर्जे हैं, सरकारी भ्रष्टाचार के पक्के और जानदार सबूत हैं। हर सरकारी महकमे में इनका बोलबाला है। आप लोग बाहर काम करते हैं, यह भीतर से ही घर खोद रहे हैं। इसलिये मेरा नम्रतापूर्ण-- हलका सा—दावा है कि वर्तमान जन-विद्रोह में हम लोगों का—यानी इनका भी हाथ है।

बधलाल हुसैन—मैं भी इसकी ताईद करता हूँ। भड़कने-भड़कानेवाली बातें सुन-सुन कर शरीफ़ कारिन्दों में भी खूल लग जाती है। भला मिनिस्टरों और कांग्रेस-नेताओं तक में क्रपशन की तेज़ फिनाईल सूँघ कर कौन भलामानुस बहती गंगा में डुबकी लगाना न चाहेगा? हमारे बहुत से हमक़ौम भाई जो वक्त की मार से चुप्पी मारे हुए थे, सबका साथ देने को तैयार हैं।

पत्रकारानन्द—आप लोग उन्हें क्यों भूल रहे हैं, जिनके द्वारा असल काम होता है? बहुत से युगदेव दूत-गरीब पत्रकारों, कार्टूनिस्टों और रिपोर्टरों को क्यों इस काम का महत्त्व देना नहीं चाहते? जनमत-जनता का नाजायज़ नहीं-जायज़ फायदा उठाकर, दबंगता के साथ यही तो जन-क्षोभ का खुला प्रचार करते हैं। यही...... ॥

कामरेड पिल०—माफ़ कीजियेगा महाशय। आज के बहुतेरे भारतीय पत्रकार—पत्राध्यक्ष या सम्पादक—किसी न किसी राजनीतिक गुटबंदी के नेता हैं या अनुयायी। इनका मँजा हुआ अभ्यास घूमधुमौव्वे शब्दाडम्बर से सभ्य-गाली देने का रहा है। पहले ज़ियादतर अंगरेज़ों की खबर ली जाती थी। अब भी हथियार वही है, सिर्फ़ निशाना बदल गया है। इसके सिवा, इनके गोबरकुण्डे-दिमाग़शरीफ़ में और कुछ है भी तो नहीं। जनक्षोभ पैदा करते हैं हम लोग, ये पत्रकार तो उसे बेचकर अपना पेट पालते हैं।

पत्र का० –(उठकर) आप बहुत बहक रहे हैं, इतने टुच्चेपन पर न उतरिये मिस्टर कामरेड !

काम० –(उठकर) खबरदार, आप टुच्चेपन को वापस लीजिये।

मुंशी—जी हाँ पत्रकारानन्दजी, आपका आक्षेप तीव्र हो गया।

पत्र कारा०— मुझे अफ़सोस है। [दोनों बैठते हैं]

मोटेलाल खुराफ़ातिया—जिस प्रकार आप सबने मान लिया है कि हम सबका एक ही दुश्मन है, उसी तरह यह भी कि जनता में सरकार के प्रति असंतोष-वृद्धि हो रही है। इसकी बड़ाई अपने अपने दल-स्वार्थ से आप लोग बखान रहे हैं। लेकिन ज़रा गहराई से सोचिए। सरकार में भ्रष्टाचार का कारण क्या

है ? घूसखोरी। जनता को क्या शिकायत है ? अन्न-वस्त्र तथा अन्य जीवनोपयोगी वस्तुओं की महँगी। अब देखिए कि घूस-खोरी और महँगी का कारण क्या है ? वही, जो ब्लैक-मार्केटिंग के नाम से बदनाम हैं।

काम०—पूँजीपतियों की गद्दारी और मक्कारी से भरा रोजगार।

मोटे०—ठंढे मन से काम लीजिये कामरेड। ग्राहक को संतोष दिलाकर, दो पैसे पैदा करना, हर व्यापारी, सदा से करता आया है। इस 'आर्ट' को आप चाहें जिस नाम से कोसें, मगर है यह स्वाभाविक। देश जब विश्व-युद्ध से पीड़ित हो या किसी दैवी विपत्ति में फँसा हो, तो जीवन-निर्वाह की चीजों का मिलना असंभव की भाँति महा-कठिन हो जाता है। परिश्रमी व्यापारी पैसों का पानी बहाकर—जान पर खेल कर, उन्हें मुहैया करता है। फिर, अगर औसत से, मुनासिबाना कुछ अधिक दर पर बेचता है, तो इसमें अन्याय क्या है ?

कोको०—बिल्कुल नहीं, एकदम मुनासिब।

घुरघुरा०—सत्य वचन, व्यापारे वसते लक्ष्मीः।

कामरेड०—असल तो यह है मिस्टर कोकोवाइलमन, यह पेड़ आप ही लोगों का लगाया हुआ है। ब्लैकमार्केट का सीधा अर्थ है—कालाबाजार। मतलब कालों का बाजार। और इसकी बुनि-याद तब पड़ी थी, जब गोरों ने कालों की मार्केटिंग—खरीद-

बिक्री शुरू की थी—अर्थात् काले देशों को अपना बाजार बनाना-आरम्भ किया था।

घुरघुरा०—नहीं, नहीं, काला शब्द अत्यन्त प्राचीन है—सनातन है। यह रंगों में सर्वश्रेष्ठ है। काले विष्णु हैं-राम हैं-कृष्ण हैं। काला आकाश, काले-काले बादल, काले अलिवृन्द, सस्य-श्यामला—

कामरेड०—वाह, क्या कहने हैं शास्त्री जी के! अंधकार काला, विष काला, सुना है यमराज भी काले हैं। यही तो है ऐसे पूँजीपतियों का असल रंग!

सेठ०—आपको तो साहब, पूँजीपति शब्द से ही चिढ़ है। एक ही लाठी से आप सब को हाँकते हैं। वास्तव में आपके लक्ष्य होने चाहिये वे पूँजीपति जो कांग्रेस-सरकार के समर्थक और उसके सहयोग से मजदूरों को चूसनेवाले हैं। हम लोग तो मजदूरों को हिस्सेदार समझते हैं, आपके, और शास्त्री जी के दल के गुप्त सहायक हैं।

घुरघुरा०—इसमें क्या संदेह है सेठ जी। जब भारत पर भगवा झंडा लहराने लगेगा, तभी भामाशाह की तरह आपकी सहायता का मूल्य आँका जायेगा। हमारे छद्म-वेषी समाचार-पत्र, और संस्थाएँ, आप ही लोगों के बल पर तो चलती हैं।

कामरेड०—हमारे दल से, आपकी सहायता का क्या संबंध?

सेठ०—(मुस्कुराकर) चोपटानन्द, हड़पलाल, भकोल सिंह, किरापट तिवारी को आप जानते हैं?

कामरेड०—यह लीजिये, यहां तो हमारे अर्थ-वीर हैं। किन-किन मुसीबतों से यह बेचारे रुपये-पैसे की जोगाड़ करते हैं, हमें भी नहीं मालूम।

मोटे०—(हँस कर) मालूम हो भी नहीं सकता। इस बारे में हमारा प्रबन्ध ही ऐसा है। हमारे सरीखे अनेक व्यापारियों ने बहुत बड़ा फंड इकट्ठा करके, कांग्रेस-विरोधी संस्थाओं की सहायता का कार्यक्रम इस प्रकार बना रखा है कि उनका कहीं कुछ खुला हिसाब नहीं है। आपके बेचारों वीरों को भी पता नहीं है।

कामरेड०—खैर, यह माना कि आर्थिक सहायता दे-दिलाकर आप लोग अपने विराट पापों का लघु प्रायश्चित्त कर लेते हैं, किन्तु ब्लैकमार्केट में हमारे किसान-मजदूर ही जियादा पीसे, जाते हैं।

मोटे०—इस बारे में भी भ्रम निवारण कर लीजिये। ब्लैक-मार्केट की बाजार-पद्धति में, सच पूछिये तो अप्रत्यक्ष रूप से समाजवाद और साम्यवाद का रहस्य छिपा है।

वैषम्या०—अच्छा जी !! ज़रा सुनें तो।—

मोटे०—हाँ सुनिये। चाहे जिस प्रकार का माल हो, रेल से-जहाज से—प्लेन से—ट्रक-मोटर से—घोड़े-बैल से—नाव से या पैदल, इधर-उधर भेजा जाता है। इनसे सम्बन्धित कई प्रकार के कर्मचारियों को मुँहमाँगा पारिश्रमिक अवश्य देना

पड़ता है। इस प्रकार मुनाफे के १२-१४ आने इन साझेदारों में वितरण कर, हम कई भागीदारों के हिस्से में केवल दो या चार आने ही पड़ते हैं। अब आप ही ईमान से—नहीं-नहीं, ईमान छोड़ कर बताइये, हम लोग एक सच्चे मानी में समाजवादी या साम्य-वादी हैं या नहीं ?

क्रोकोडाइलसन—हम लोग कितने ही यूरोपियन, यहाँ रोज-गार या सर्विस में हैं। नाता निहायत गहरा रहा है। हम-लोगों ने इस देश को सँवारा है, सुधारा है, और इस लायक बनाया है। आज जो कुछ यहाँ हो रहा है, उससे हम लोग भी अलग नहीं हैं।

कामरेड पिल०—खुद सुलगाकर जमा लो भला कहीं दूर रह सकती हैं ?

क्रोको०—ह्वाट ?

कामरेड पिल०—यानी आप ठीक कह रह रहे हैं।

क्रोको०—थैंक्यू। हाँ तो मैं यह कर रहा था कि हम लोगों की भी दिलचस्पी आप लोगों की इस मौजूदा हलचल में है। आप सब ने अपने अपने पार्ट अदा करने की बड़ाई हाँकी। हम लोगों के भी कभी इन को हाँकने का मौक़ा आयेगा। पर कब ? जब आप और हम कामयाब होंगे। खुदा वह दिन जल्द दिखाए। (हाथघड़ी देख कर) भाइयो, तीन घंटे से हम इस कालकोठरी में बन्द हैं। दो घंटे बाद, शायद सबके दम न घुटने लग

जायँ। इसलिये असल सबजेक्ट पर आकर एक फैसला कर लेना चाहिये। मेरा सुझाव है किसी एक मजबूत पार्टी को हम लोग चुन लें और उसी का साथ दें। अब सवाल है कि किसे चुनें?

कामरेड०—नेचरली कम्युनिस्ट पार्टी को।

घुरघुरा०—नहीं नहीं, भगवा झण्डा-समर्थक दल को।

मुंशी०—सोशलिस्ट पार्टी को।

गन्दर बोस—फारवर्डब्लाक को।

वैपम्यानन्द०—किसान-मजदूर संघ ही इसका अधिकारी है।

कोकों०—(नम्रता से) कोई एक को चुन लीजिये न! [उपरोक्त दल उसी प्रकार अपने कथन-जोर से दोहराते हैं। हल्ला सा मच जाता है]

कोकों०—देखिए, इसी तरह अगर आपस में ही रगड़ होती रही, तो हमारा जबरदस्त दुश्मन विलाशक कामयाब हो जायगा।

कामरेड०—हम उसे कुचल देंगे।

घुरघुरा०—हम उसका नाश कर देंगे।

मुंशी०—हम केवल उसकी कमर तोड़कर छोड़ देंगे—मतलब यह कि—हिंसा नहीं करेंगे।

वैपम्या०—हम उससे राज्य छीन, उसके अधिकारियों से खेती और मजदूरी का काम लेंगे।

(फिर हल्ला मचता है।)

मोटे०—शान्त हो जाइए, शान्ति से काम लीजिये। देखिए, केवल इतना कहने से ही कि 'हम यह करेंगे, वह करेंगे', काम नहीं चलेगा। कुछ त्याग करने से और कुछ सचाई से काम करने से ही सफलता मिलेगी। अगर आपस में समझौता करके एक दल नहीं चुन सकते, तो मेरा एक प्रस्ताव है।

कामरेड०—कहिए।

घुरघुरा०—आपका प्रस्ताव निश्चय ही व्यावहारिक होगा, अवश्य कहिए।

मो०—कांग्रेस के जितने विरोधी दल हैं, सब अपने-अपने उम्मीदवार खड़े करें। और हम लोग, अपने-अपने दृष्टिकोण से उनको विजयी बनाने की चेष्टा करें।

(सब की विचार-मुद्राएँ भिन्न-भिन्न और दर्शनीय। आधा मिनिट चुप—वातावरण।)

कामरेड०—लेकिन साथी, इससे यह भी तो हो सकता है कि अलग-अलग उम्मीदवार खड़े करने से, हम सबके वोट बँट जायँ, और अकेला होने से दुश्मन-दल बाजी ले जाय।

(फिर सब सोचने लगते हैं—क्षण भर चुप्पी)

मोटे०—परन्तु यह भी तो हो सकता है कि अलग-अलग दलों में बँट जाने पर कांग्रेस को भी इतने वोट न मिलें कि वह अपनी सरकार बना सके।

[फिर सब एक-दूसरे का मुँह निहारते हैं]

क्रांको०—तब, ऐसी हालत में, आप बहुमत से एकदली सरकार बना सकते हैं। इस काम में अगर आप पसन्द करें तो हम—बृटिश लोग, हिन्द-यूनियन के सच्चे शुभचिंतक की हैसियत से, इस नेक काम में मदद करेंगे।

कामरेड०—(क्षण भर सोचकर व्यंग से हँस कर) वाह उस्ताद, क्या दूर की कौड़ी लाई है तुमने। कुर्बान जाऊँ इस सूझ-बूझ के। (धीरे से) और इसी आड़ में इस दफा विलायती चुनाव-चक्र में चर्चिल-पंथियों को बाजी बदने का मौका भी मिल सकता है!

[दरवाजे पर खट् खट् की तेज ध्वनि। सब चौंककर उधर देखते हैं। मोटेलाल जी सहमते-डरते से, द्वार खोलते हैं। भारी कोलाहल—भयंकर चीख-पुकार की आवाज। घबराया हुआ एक संतरी भीतर आकर द्वार बन्द कर लेता है।]

१ संतरी—करीब घंटे भर से लोगों में बेतरह लूट-मार मची हुई है।

क्रांको०—आमें पुलिस या फौज नहीं आई?

१ संतरी—नहीं साहब, अभी तक नहीं।

क्रांको०—(जैसे सन्तोष हुआ हो) आखिर बगावत फैल ही गई।

१ संतरी—साहब, बगावत तो सरकार के खिलाफ प्रजा

करती है, लेकिन इसमें तो आपस ही में लोग एक-दूसरे को लूट रहे हैं—मार-काट मचा रहे हैं।

कामरेड०—ग़रीब—और मज़दूर भी ?

१ सन्तरी—जी हाँ सब। जिसका जो चाहता है, लूट-खसोट कर रहा है।

घुरघुरा०—हिन्दू, मुसलमानों को नहीं लूट रहे ?

१ सन्तरी—कह तो दिया कि ग़रीब, अमीर या हिन्दू मुसलमान का कोई भेद ही नहीं है।

[फिर द्वार पर खट्-खट् की पहले से भी तेज़ आवाज़] १ संतरी दरवाज़ा खोलता है, बेतरह घबराये हुए दूसरे सन्तरी के साथ लोहू-लुहान, फटे चिटों वस्त्रों में तीन युवकों का झटसे प्रवेश। कोलाहल और भी ज़ोरों पर। द्वार बन्द कर लिया जाता है]

२ रा सन्तरी—यह साहब तीनों जवान चहारदीवारी लाँघ कर अन्दर आ गये, गोली मारने के बजाय मैं इन्हें यहाँ ले आया।

मॉंटे०—अच्छा किया, (युवकों से) आप कौन हैं—और इस तरह.....?

१ युवक—(ओठों को जीभ से तरकाता हुआ) क्या बताऊँ ? (पिलपिल को पहचान कर) अरे आप भी यहाँ हैं ?

कामरेड०—कौन ? आबजोश भाई ? आवो आवो (खुद खड़े होकर अपनी कुरसी पर बैठाता है) अब कोई हरज नहीं है।

यह बग़ीचा हमारे दोस्त मोटेलाल जी का है। मगर यह (दूनों अन्य युवकों की ओर देखकर) कौन हैं ?

आवजोश—यह हैं रक्त आर्य महाशय, मशहूर कामरेड। (घुरघुरानन्द उसे अपनी कुर्सी पर बैठाकर खड़े हो जाते हैं) और यह हैं हम लोगों के नेता कामरेड पलीता (सब खड़े होकर नमस्कार करते हैं। मोटेलाल जी उन्हें अपनी कुरसी पर बैठाते हैं)

कामरेड पिल०—आज का प्रोग्राम कामयाब तो हुआ न ? हम लोग क़रीब-क़रीब आधी रात से ही—इसी मसले पर ग़ौर कर रहे हैं।

कामरेड पलीता—(गिरे मन से) क्या कहूँ, इस मुल्क की तक़दीर ही ऐसी है। आज हमारा प्रोग्राम रेल, तार, डाक, बिजली और पानीघर, कल-कारखानों में तोड़-फोड़ करके सारे देश में उपद्रव मचा देने का था। शुरुआत के लिये यही क़सबा चुना था......जरा पानी; (मोटेलाल झट सुराही से शीशे के ग्लास में पानी लाते हैं। पीकर) पिछले छः महीने से लोगों को इस काम की ट्रेनिंग दी जा रही थी।

क्रोको०—हमें मालूम है।

मोटे०—हमने काफ़ी चंदा दिलवाया है।

कामरेड पिल०—तो, कार्य-क्रम में कुछ गड़बड़ी हो गयी, या लोगों ने साथ नहीं दिया ?

कामरेड पलीता—(धीरे से) सब हो गया। (दम लेकर) करीब आधे घंटे तक तो ठीक-ठीक चला। जैसा कि इशारा था, सिखाये लोगों ने ग़ैर-कानूनी कार्रवाइयाँ शुरू कर दीं। दो जगह रेल की पटरी उखाड़ी, डेढ़ दर्जन टेलिग्राफ-टेलिफोन के खम्बे गिराये, डाक-तार घर लूटे गये, और भी कई सरक
लूटे-जलाये गये। देखा-देखी औरों ने भी मौके से फ़ायदा उठा लेना चाहा। कुछ लूट-खसोट भी चली। मगर खबर-पर-खबर देने पर भी पुलिस—फौज न आयी। हमारी चाल थी कि पुलिस फौज ज्यों ही कड़ाई पर उतर आयेगी तो यह चिनगारी सरकार के खिलाफ़ बग़ावत की आग भड़का देगी। फिर तो इस आग को हम सारे मुल्क में लगा देते। मगर अफ़सोस, न जाने सरकार को मालूम हो गया, या क्या हुआ कि आर्म पुलिस—फौज को कौन कहे, मामूली चौकीदार भी न आया। थोड़ी देर बाद यह आग खुद में ही जल उठी। ऐसी लूट-मार मची कि मानो आपस में ही जंग छिड़ गया हो। हम लोगों ने—सारे वर्करों ने—जो जान से रोकने की कोशिश की। मगर बरसाती महानदी का बहाव रोकने जैसा नामुमकिन हो गया। इसका नतीजा यह हुआ कि लोग अब बचने की तरकीबें करने लगे। गिरोह बना-बना कर लूट-मार करनेवालों को रोकना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे, ऐसे बहुत से लोगों का अ-क़ायदे का संगठन हो गया। ग़ैर-क़ानूनी कार्रवाइयाँ करने और लूट-खसोट मचाने

वालों को पकड़-पकड़ कर पीटना और पुलिस चौकी पहुँचाया जाने लगा। कुछ बाद में पुलिस-फौज आई। लोगों की धरपकड़ शुरू हो गयी। कई गोलियों से मरे, जख्मी हुए, बाकी पकड़ लिये गये या पकड़ लिये जायेंगे। क्योंकि आम जनता का सहयोग पुलिस को आपसे आप मिलने लगा है। हम लोग किसी तरह जान बचाकर भागे। (कुछ सोचकर) अब यह सरकार सैकड़ों साल के लिये मजबूत हो गई।

[द्वार पर खट्खटाहट की आवाज। मोटेलाल दरवाजा खोलते हैं, तीसरा सन्तरी घबराया हुआ अन्दर आकर]

३ संतरी—पुलिस-फौज ने चारों ओर से बाग घेर लिया। कप्तान साहब फाटक खोलने को कहते हैं।

[सब घबराते हैं। मोटेलाल काँप उठता है]

मोटेलाल--घेर लिया ?......तब तो, तब तो महा मुश्किल... (कुछ सोचकर) पहरेदार, तुम लोग इन तीनों (आए हुए काम-रेडों) को पकड़ लो।

कामरेड पिल०—यह महा अन्याय होगा लालाजी।

मोटेलाल—(संतरियों से)—इसे भी पकड़ लो। [तब तक फाटक तोड़कर पुलिस-फौज-अफसर रिवाल्वर और संगीनी-बंदूक ताने अन्दर आ पहुँचे]

कप्तान—हैंडस् अप !... [सब हाथ ऊपर उठाते हैं]

पुलिस कप्तान—खबरदार, जिस किसी के पास कोई हथियार हो दे दे।

[सब की तलाशी। सिर्फ १ कामरेड के पास से रिवाल्वर और दो के पास से बम निकले। तीनों को हथकड़ियाँ भर दी गईं।]

कप्तान०—(अकस्मात् पिलपिल और शास्त्री को देखकर) ओहो, आप लोग भी मौजूद हैं ? (उन्हें भी हथकड़ियाँ भर कर) यह सर झुकाए कौन हज़रत हैं ? (नजदीक जाकर, हँस कर) ओ गुडमौर्निंग मि० क्रॉकोडाइलसन ? आपके बारे में भी सरकारी हुक्मनामा है। (क्रॉकोडाइलसन फीकेपन से मुस्कुराता है। (मोटेलाल से) आप अपने बग़ीचे में इन मेहमानों के साथ, आधी रात से ही बंद क्यों हो रहे थे ?

मोटे०—(गिड़गिड़ाहट की लजीली मुस्कुराहट से)…क्या बताऊँ…आप लोग तो जानते ही हैं…हम लोग… ?

कप्तान (हँसकर) ओ' ब्लेकमार्केटिंग की हिस्सेदारी, राय-मशिवरा, क्यों ?

मोटे०—(उसी अभिनय से) अब, अपने मुँह से क्या कहूँ ?' आप तो समझ ही गये। (सबकी ओर देखता है)

कप्तान—तो आप सभी साझेदार हैं ?

मोटे०—जी, इन चारों (कामरेडों) को छोड़कर।

कप्तान—कोई बही-खाता है इस मार्केट का ?

मोटे०—जी नहीं।

कमान—(बगलवाले बंद छोटे रूम को दिखाकर) इस रूम में क्या है ?

मोटे०—जी, इस बंगले की फुटकर चीजें इसमें रहती हैं।

कमान—खोलिये तो…

[मोटेलाल ताला खोलता है, मगर दरवाजा भीतर से बंद देखकर चकचकाता है]

मोटे०—भीतर से बन्द किसने किया ?

कमान—(हँसकर, दरवाजे पर ४ दस्तक देता है। द्वार खुल जाता है। अन्दर दो पुलिस ऑफिसर वाकयन्त्र पर कुछ काम करते हुए)

मोटे०—(घबराकर) यह क्या ?

[क्रोकोडाइलसन पाकेट से कुछ निकाल कर मुँह में रख लेता है।]

कमान—आपके आज के ब्लैक मार्केट का बोलता चिट्ठा—आपकी बातचीत की रेकर्डिंग। चलिये थाने पर, वहीं सब अपना-अपना बयान सुन लीजिये।

मुंशी हररूप०—क्या हम लोगों में से कोई सरकारी गवाह नहीं बन सकता कमान साहब ?

कमान—आप ऐसे बहुरूपिया तो हरगिज नहीं। [क्रोको-डाइलसन कुर्सी पर अचेत हो जाता है। कमान जाँच कर अफसोस से सर हिलाता है] अफसोस, इस बेचारे ने खुद ही अपना प्रायश्चित्त कर लिया।

[कप्तान के इशारे से घायल कामरेडों की मरहम-पट्टी की जाती है। दोनों पुलिस ऑफिसर वाक्यंत्र का विवरण देते हैं, कप्तान देखकर उसमें कई जगह निशान लगाते हैं।]

कप्तान—हाँ, यह तो बताइए पत्रकारानन्द जी। भारत के अधिकांश पत्रकार काँग्रेस के समर्थक हैं। वे अगर उसकी आलोचना करते हैं, तो सुधार भाव से—अपनापन से। फिर, सरकार विरोधी—असंतोष उत्पन्न करने का श्रेय आप क्यों लेना चाहते हैं?

पत्रकारा०—(कुछ झेंपते हुए—रुक-रुक कर) बात यह है कि कितने ही पत्रकार······

कप्तान—आपकी तरह अवसरवादी हैं। आज सरकार फेल कर जाय तो कहेंगे—इसमें हमारी भी बहादुरी है, अगर मजबूत रहे तो डींग हाँकेंगे कि हम तो उसे ऐसा बनाने के लिये ही आलोचना करते थे। वाहरी पत्रकारिता! (मोटेलाल से) अच्छा लाला सेठ, आपके डबल ब्लैकमार्केट की पोल खुल गई। भगवान और धर्म को आप ठग सकते हैं, किन्तु सरकार के वफादार कर्मचारियों को नहीं। आपके इस बारा का मुन्नू माली, त्रिभुवन सिंह जमादार और आपका भतीजा रामलाल सरकारी गवाह बन गये हैं।

मोटेलाल—जी, सरकार······मैं केवल ब्लैक-मार्केटिंग का दोषी हो सकता हूँ, लेकिन सरकार के विरुद्ध में······

कप्तान—ब्लैकमार्केटिंग ही तो सारे खुराफात की जड़ है खुराफातिया जी। खैर, चलिये बड़े घर।